अद्भुत दुनि
पक्षियों
राजेन्द्र कुमार

अद्‌भुत दुनिया पक्षियों की

द्भुत दुनिया पक्षियों की

राजेन्द्र कुमार 'राजीव'

विद्यार्थी प्रकाशन

ISBN 81-85256-23-3

प्रकाशक
विद्यार्थी प्रकाशन
के-71, कृष्णनगर, दिल्ली-110051

प्रथम सस्करण
2003

आवरण
परमिदर सिह

मूल्य . 100.00

अक्षर संयोजक
सजय लेजर प्रिटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

मुद्रक
आर. के. आफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

ADBHUT DUNIA PACHION KI *by* Rajendra Kumar 'Rajeev'

अनुक्रम

चिड़िया

इस पक्षी से सभी परिचित हैं। ख़ास तौर से छोटी-छोटी कहानियों का इनसे सम्बन्ध भी बहुत रहता है। इनका चहकना और फुदकना बड़ा मज़ेदार लगता है! सवेरा हुआ नहीं कि चिड़ियों को एक पेड़ से दूरे पेड़ पर या एक मकान की छत से दूसरे मकान की छत पर उड़ते हुए देखा जा सकता है। उड़ते हुए इनका जोर-जोर से चहकना शुरू हो जाता है। यह शोर इतनी जोर का होता है जिससे पता चल जाता है कि अब सवेरा हो गया है।

ये न केवल वृक्षों पर, बल्कि घर के अन्दर भी स्वच्छन्दतापूर्वक चहकती-फुदकती रहती हैं। जब मादा चिड़िया का अंडे देने का समय होता है, उसके पहले से ही नर और मादा चिड़िया सुरक्षा की दृष्टि से वृक्षों के बजाय मकानों में भी घोंसला बनाना शुरू कर देते हैं। इनके घोंसले का निर्माण छोटे-छोटे परों, तिनकों, रुई और बारीक कपड़े के टुकड़ों से होता है। मादा चिड़िया एक बार में 4-5 छोटे-छोटे सफ़ेद रंग के अंडे देती है। वह उनकी सुरक्षा के लिए रखवाली भी बड़ी सतर्कता से करती है। इसमें उसका नर चिड़ा भी पूर्ण

रूप से सहयोग देता है। हमारे आस-पास उड़
वाले पक्षियों में सबसे अधिक संख्या इन्हीं
की होती है; क्योंकि ये मनुष्य के पारिवारिक
से अपना भोजन प्राप्त होते रहने के कारण
सम्पर्क रखती हैं।

'चिड़िया' शब्द का प्रयोग आकाश में उड़
हर पक्षी के लिए भी किया जाता है। इस श
व्युत्पत्ति संस्कृत के 'चटिका' से मानी जात
'चटिका' शब्द से प्राकृत में 'चड़ि आ'

'चिड़िया' बना . इसे सस्कृत मे 'चिरि' से भी व्युत्पन्न माना जाता है। एक तीसरी व्युत्पत्ति 'चि'-'चि' ध्वनि करने के कारण भी मानी गयी है।

हीरे की लौंग

किसी गांव में एक पुरोहित रहता था। जो वहां के मन्दिर का पुजारी तो था ही, साथ ही वह ग्रामवासियों के बच्चों को पढ़ाता भी था। फिर भी उसे फुर्सत मिलती थी। इसलिए वह बस्ती के लोगों के यहां धार्मिक कथा पढ़ना, पूजा-पाठ कराना और विवाह आदि संस्कार भी कराता था। इन सब कार्यों को करने से उसको बड़ी आमदनी थी। उसका मकान भी गांव में पक्का और बड़ा बना हुआ था। उसमें कई कमरे, आंगन, बरामदे और मुंडेरें थीं। उसी मकान में एक अच्छी-सी जगह ढूंढ़कर एक चिड़े और चिड़िया ने मिलकर अपना घोंसला बना लिया। वे उसमें आनन्द से रहने लगे। घोंसले में चिड़िया ने कुछ अंडे भी दिये।

एक दिन चिड़े ने चिड़िया को पुकारकर कहा—"जरा एक बात सुनो !"

चिड़िया चिड़े के पास आयी और उसकी तरफ़

देखने लगी

चिड़ा कहने लगा—"अपने इस घर के मालिक पंडित धर्मदास से उनकी पत्नी किसी-न-किसी बात पर सदा झगड़ती रहती है। जरा इसका कारण तो मालूम करो ! शायद तुम्हें मालूम भी हो।"

चिड़िया ने बात को टालते हुए कहा—"वाह, मैं क्या जानूं। हमारे पास अपना ही काम बहुत है। दूसरे के कामों या झगड़े-फसादों की तरफ़ हम क्यों ध्यान दें ?"

किन्तु चिड़े को यह बात पसन्द नहीं आयी। उसने फिर कहा—"यह तो मैं खूब जानता हूं कि तुम्हें बस केवल अपने से ही मतलब रहता है, पर जिसके घर में हम रहते हैं, क्या हमें उसकी सहायता करना अपना कर्तव्य नहीं समझना चाहिए ?"

चिड़िया ने हंसकर जवाब दिया—"हो चुकी आपसे सहायता ! मैं कहती हूं कि बस व्यर्थ की बातें करना छोड़ो। हमें अपना समय व्यर्थ की बातों में नहीं लगाना चाहिए। और हां, देखना, कोई बिल्ला या बिल्ली घोंसले के पास न आ पहुंचे। नहीं तो अपने बच्चे ख़तरे में पड़ जायेंगे।"

कुछ समय बाद चिड़े को कहीं से कूड़े में हीरे

जडी एक छोटी सी लौग मिली उसे चोच मे दबाकर वह अपनी चिड़िया रानी को प्रसन्न करने पहुंचा और उससे कहने लगा—"देखो तो, तुम्हारे लिए क्या लाया हूं ! यह गहना नाक में पहना जाता है। तुम पहनोगी इसे ?"

चिड़िया बोली—"मुझे जेवर-गहनों का शौक नहीं है। कहीं से कुछ अनाज के दाने अथवा कीड़े-मकोड़े मिल जायें तो ले आओ। बच्चे भूख से कारण तडप रहे हैं। देखा नहीं जाता।"

चिड़े ने हीरे की सुन्दर लौंग को वहीं पर नीचे गिरा दिया और फिर कीड़ों की तलाश में निकल पड़ा।

पंडित धर्मदास की पत्नी जब घर में झाडू लगा रही थी तो उसने देखा कि एक चमकती हुई लौंग नीचे पड़ी है। उसने उठाकर उसे अपने पास रख लिया। पंडितजी ने जब अपनी पत्नी के पास हीरे की लौंग देखी तो वह हैरान रह गये। उन्होंने गुस्से में भरकर अपनी पत्नी से पूछा—"तुम्हें यह किसने दी है ? क्या किसी की उठा लायी हो?"

पत्नी ने बताया—"कल झाडू देते समय मुझे तो यह फ़र्श पर पड़ी मिली थी। तुम मुझ पर इलज़ाम

क्यो लगा रहे हो ?"

अपनी पत्नी का जवाब सुनकर धर्मदास कहने लगा—"तो पहला काम हम यह करें कि इसे गांव के पटवारी को सौंप दें; क्योंकि इसके कारण यदि कहीं पुलिस घर में तलाशी लेने आ पहुंची तो मैं कहीं भी मुंह दिखाने योग्य नहीं रहूंगा।"

पत्नी जिद्दी स्वभाव की थी। कहने लगी—"जो वस्तु मुझे मिली है, वह मेरी है। मैं उसे क्यों दूं ?"
और इसी समय किसी दूसरे घर में दो मां-बेटी इस प्रकार बातचीत कर रही थीं। विजया अपनी मां से कह रही थी—"मां नहाते समय मैंने लौंग उतारकर रख दी थी। अपनी दासी तो मां तुम जानती ही हो, कितनी मूर्ख है। उसने कूड़ा निकालते समय उसे भी कहीं फेंक दिया होगा।"

विजया की मां सावित्री देवी ने अपनी लड़की को समझाते हुए कहा—"पहले अच्छी तरह सब जगह खोज लो। अभी पिताजी से मत कहना कि लौंग खो गयी है, नहीं तो वह बहुत नाराज़ होंगे।"

"मां-बेटी में आपस में यह क्या घुसपुस हो रही है, मुझे भी तो मालूम हो !" उसी समय विजया के पिता ने अचानक आकर यह कहा।

अन्त मे धीरे-धीरे यह बात पहले सारे गाव मे दबी ज़बान से अफ़वाह के रूप में फैली। बाद में इसे जब वास्तविकता का रूप मिला तो बात बढ़ गयी। लोगों का यही कहना था कि चोरी नौकरानी ने की है। अन्त में पुलिस ने उसके घर की तलाशी ली, परन्तु लौंग नहीं मिली। पंडित धर्मदास की पत्नी को तो भय के कारण तेज बुख़ार चढ़ आया। पंडितजी को संकट जान पड़ने लगा और उनके दिल की धड़कन बढ़ गयी, किन्तु ख़ैर यह हुई कि उनके घर में न कोई पूछने आया और न तलाशी हुई।

यह सब देखकर चिड़े ने हंसकर चिड़िया से कहा—"देखा तमाशा ?"

चिड़िया ने सुना तो चिढ़ गयी और उत्तर दिया—"तुम्हें तो बस मज़ाक सूझ रहा है, जबकि बेचारी पंडितानी तभी से बुख़ार में पड़ी है। उसकी जान पर बीत रही है। उसकी हालत देखकर मुझे तो डर लग रहा है कि कहीं वह मर न जाये।"

"अच्छी बात है।" चिड़े ने कहा।

सुनकर चिड़िया ने व्यंग्य किया और कहा—"यह सब जो कुछ हुआ है, तुम्हारे ही कारण हुआ है। यह समझना कठिन नहीं है।"

"लेकिन मैं क्या करता ? मैंने पंडितानी से यह थोड़े ही कहा था कि लौंग उठाकर अपने पास रख लेना। पति की बात न मानने से ही यह सब हुआ।" चिड़े ने चिढ़ाने के लिए अकड़कर चिड़िया से कहा।

चिड़िया अब झुकी और बोली—"अच्छी बात है, मैं तुम्हारा कहना हमेशा मानूंगी, बस !" वह फिर हंसकर कहने लगी—"चलो, अब दोनों अपने बच्चों के लिए कहीं से दाने या कीड़े-मकोड़े लेने बाहर निकल पड़ें। बस, बहुत हुआ।"

इसके बाद दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा और मुसकराये, फिर दोनों आकाश की ओर चोंच उठाये, पंख फैलाये 'फर-फर' की आवाज़ करते बाहर की ओर उड़ गये। नीचे ज़मीन पर अनेक आंखें उन्हें आकाश की ओर साथ-साथ उड़ते देख रही थीं।

कोयल

कोयल रंग-रूप में तो कौवे से मिलती-जुलती है, परन्तु बोली और स्वभाव में कौवे से बिलकुल भिन्न है। कौवे की बोली किसी को भी अच्छी नहीं लगती; क्योंकि वह कर्कश होती है। किन्तु कोयल की बोली

है, जो सबको प्यारी लगती है इसकी
र कुछ लम्बी होती है। अपनी मधुर
इसे आसानी से पहचान लिया जाता है।
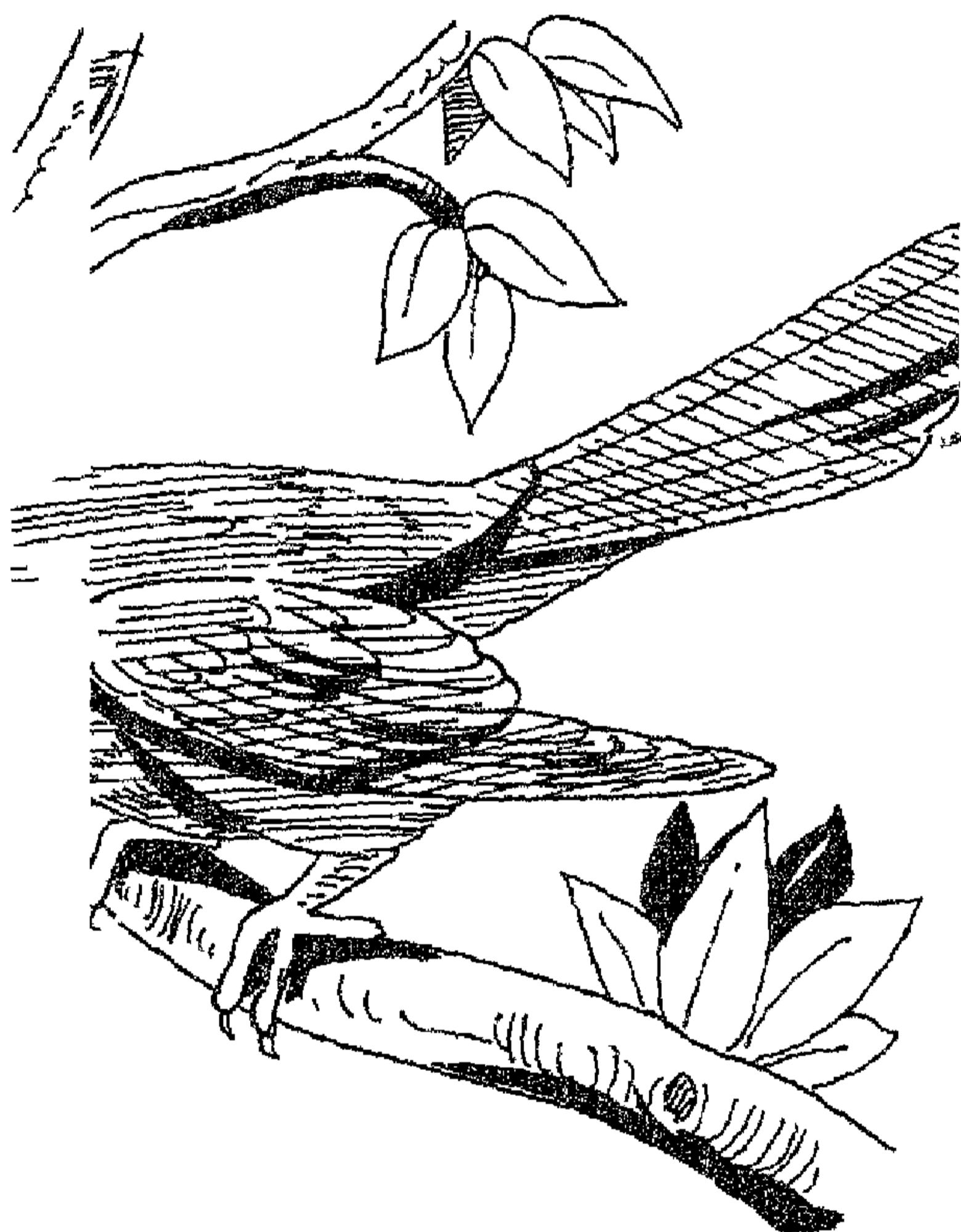
है कि कोयल अपने बच्चे खुद नहीं
न्हें कौवों से पलवाती है। इसीलिए इसे
कहा जाता है।

र-भारत के तमाम प्रदेशों में गर्मी के
ती है। शीतकाल में वह उत्तर-भारत की

सख्त सर्दी न सह सकने के कारण देश के दक्षिण भाग में चली जाती है, परन्तु बगाल मे वह सर्दियो में भी रह जाती है, क्योंकि वहां सर्दी कम पड़ती है।

कद में कोयल कबूतर से कुछ छोटी होती है, परन्तु पूंछ को मिलाकर उसकी लम्बाई सवा फुट से डेढ़ फुट तक होती है। नर बहुत काला होता है, परन्तु मादा कुछ भूरे रंग की होती है। नर और मादा—दोनों की आंखों में लाली होती है। सिर सीसे के रंग का होता है। आम कोयल का प्रिय आहार है। इसका आवास भी अधिकतर आम के पेड़ों पर ही होता है। हमारे देश की प्रायः सभी भाषाओं की कविताओं में 'कोयल की कूक' का सुन्दर वर्णन मिलता है।

जिस आदमी का स्वर गाने में बहुत मीठा होता है, उसकी उपमा कोयल के सुरीले स्वर से दी जाती है। गाने में कोयल सब पक्षियों से बढ़कर है। उसकी कूक किसने नहीं सुनी ? गर्मी के मौसम में सवेरा होने के पहले ही वह बड़े उत्साह से गाती है। उसकी कूक अमराई (आम के पेड़ों का बगीचा) में अनोखी मस्ती भर देती है। उसकी 'कूक' दूर-दूर तक गूंज उठती है।

कोयल अपने अंडे खुद नहीं सेती। वह कौवों से

बेगार लेती है लड़ाई मे वह कौवो से नही जीत पाती। इसलिए कौवों को धोखा देकर उनके घोंसलों में अपने अंडे रख आती है।

कोयल का अंडा रंग-रूप और वज़न में कौवे के अंडे-जैसा नहीं होता। फिर भी कौवा अपने और कोयल के अंडों का अन्तर नहीं पहचान पाता और उन्हें अपने अंडे समझकर सेता रहता है। कोयल कौवे के घोंसले में जितने अंडे रखती है, कौवे के उतने ही अंडे नष्ट कर देती है।

दुष्टता का अन्त

गर्मी का मौसम और फिर जेठ मास की तपती हुई दोपहरी का समय। अत्यन्त गर्म लू चल रही थीं। जंगल का रास्ता था। थका-मांदा एक मुसाफ़िर अपने सिर पर सामान और कपड़ों की पोटली रखे, शहर से अपने गांव की तरफ़ जा रहा था। उसने देखा कि आगे एक बड़ा घना आम का पेड़ है। थोड़ा आगे और बढ़ा तो उसे वहीं पास में एक कुआं भी दिखायी पड़ा। यह देखकर उसे बड़ी खुशी हुई, क्योंकि प्यास के कारण उसका गला सूख रहा था।

कुएं के पास पहुंचकर उसने सिर से अपनी पोटली

उतारी और उसमें से डोर और लोटा निकालकर कुएं में से पानी निकाला। पानी पिया तो उसमें ताज़गी और शक्ति आयी, परन्तु साथ ही नींद भी आने लगी। आम के पेड़ की घनी छाया तो थी ही, वह पोटली को सिर के नीचे रखकर तुरन्त गहरी नींद में सो गया। कुछ देर तक वह निर्विघ्न सोता रहा।

उस पेड़ पर एक कोयल रहती थी। अपनी मधुर-मीठी आवाज़ से दूसरों को प्रसन्न करना और समय-समय पर दूसरों की सहायता करना वह अपना कर्तव्य समझती थी।

कुछ देर बाद मुसाफ़िर के मुंह पर धूप पड़ने लगी। कोयल ने जब यह देखा तो उसका परोपकारी मन दुखी हो उठा। वह इस चिन्ता में पड़ गयी कि इसके मुख पर छाया कैसे की जाये, ताकि यह सोता रहकर अपनी थकावट मिटा सके। कुछ देर सोचने पर उसे एक उपाय सूझ पड़ा। उसने उसके ऊपर की डाल पर बैठकर अपने पंख फैला दिये और उस मुसाफ़िर के मुंह पर छाया कर दी।

अब यह देखकर कोयल को अत्यन्त प्रसन्नता और सन्तोष हुआ कि मुसाफ़िर के मुंह पर उसके पंखों की छाया पड़ने से उसे अच्छी नींद आ गयी है। वह

सदा दूसरो को सुख और आराम पहुचाकर अपने को धन्य समझती थी। कोयल को इस प्रकार सन्तुष्ट और आनन्दित देखकर उसी पेड़ पर रहने वाले एक दुष्ट कौवे से नहीं देखा जा सका। उसके मन में द्वेष की भावना जाग पड़ी और किसी ऐसे उपाय को सोचने लगा, ताकि कोयल को बदनाम किया जा सके। सोचने पर उसे ऐसा उपाय सूझ पड़ा कि सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे।

वह तुरन्त तेजी से एक तरफ़ उड़ गया और कुछ समय में ही हड्डी का एक टुकड़ा मुंह में दबाकर लौट आया। आकर उसने हड्डी के टुकड़े को उस मुसाफ़िर के मुंह पर गिरा दिया और खुद वहीं पेड़ पर पास की डाली पर यह देखने को बैठ गया कि देखें अब इसका क्या नतीजा निकलता है। मुंह पर हड्डी का टुकड़ा पड़ते ही मुसाफ़िर हड़बड़ाकर उठ बैठा। हड्डी देखते ही उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने चारों तरफ़ देखा तो कोई दिखायी नहीं दिया। फिर उसने ऊपर देखा तो पेड़ की डाल पर उसे एक कोयल पंख फैलाये हुए दिखायी दी। उसने समझा कि यह हड्डी का टुकड़ा इस कोयल ने ही उसके मुंह पर गिराया है। इसलिए उसने एक पत्थर उठाया और उसे पूरी ताकत से

कोयल पर फेंककर वार किया।

कौवा यह देखकर प्रसन्न हो उठा कि अब कोयल को इस पत्थर से अपनी जान गंवानी पड़ेगी। किन्तु हुआ उलटा। मुसाफ़िर का निशाना चूक गया। वह पत्थर कोयल को न लगकर ठीक पास बैठे कौवे के सिर पर लगा और लगते ही मरकर वह तुरन्त पेड़ के नीचे आ गिरा। कोयल अब भी अपने पंखों की छाया मुसाफ़िर के मुख पर किये बैठी रही। मुसाफ़िर न देखा कि उसके पंखों की छाया उसके मुख पर पड़ रही थी और इसी से उसको अब तक नींद लगी थी। वह तुरन्त समझ गया कि हड्डी गिराने की दुष्टता कौवे की थी। मुसाफ़िर कुछ खाने की चीजें कोयल के लिए छोड़कर कृतज्ञता प्रकट करता आगे चल दिया।

कौवा

संसार के सारे पक्षियों में कौवा सभी का जाना-पहचाना है। वह मनुष्यों के निकट सम्पर्क में रहता है; क्योंकि वह वे सभी खाद्य पदार्थ खाता है, जो मनुष्यों के आहार में शामिल हैं। अनाज के बने पदार्थ, दूध की बनी मिठाइयां आदि वस्तुएं, तरह-तरह

के फल, मास, अडे और मछली आदि कौवा बड़े चा
से खाता है। कौवा दुनिया के सभी हिस्सों में पाय
जाता है।

इसकी करतूतें, आदतें बड़ी दिलचस्प होती हैं
छिद्रान्वेषी, धूर्त, ढीठ आदि रूप में इसकी उपमा द
जाती है।
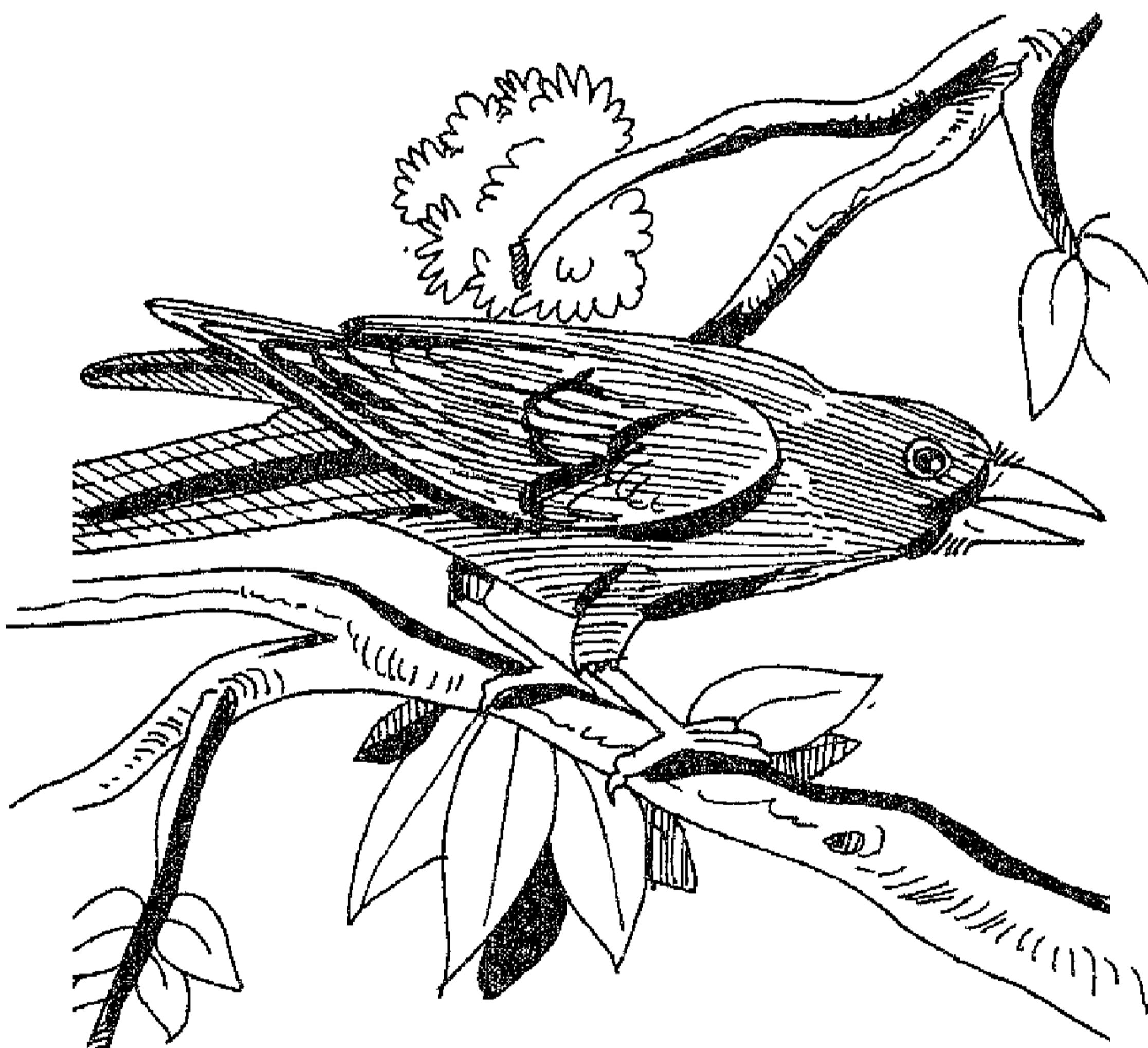
यहां कौवा दो प्रकार का देखा जाता है। एक त
वह जो बस्तियों में पाया जाता है और जिसे सभ

जानते है दूसरा जगली कौवा होता है बस्ती मे रहने वाले कौवे की गरदन स्लेटी रंग की होती है, शेष शरीर का रंग काला होता है, परन्तु जंगल में रहने वाला कौवा पूरा काला होता है।

कौवे झुंड के रूप में पेड़ों पर रहते हैं और झुंड के रूप में ही इधर-उधर उड़ते हैं। प्रातःकाल ही वे आकाश में इधर-उधर उड़ते हुए 'कांव-कांव' चिल्लाते घूमते हैं।

लोगों की ऐसी धारणा है कि इसकी केवल एक ही आंख होती है, जो दोनों गोलकों में आती रहती है। इसी कारण इसे 'काना' या 'एकाक्ष' कहा जाता है। 'कौवा' शब्द की रचना संस्कृत के 'काक' से हुई है।

कौवा बड़े पेड़ों की ऊंची, लम्बी डालों पर तिनकों, पंखों, पत्तियों आदि से घोंसला बनाता है। मादा कौवा एक बार में पांच अंडे तक देती है। इसकी 'कांव-कांव' आवाज़ कर्कश और अरुचिकर होती है।

कौवे प्रायः मैदानों में ही रहते हैं। कभी-कभी वे मनुष्य के साथ-साथ नीलगिरि और हिमाचल पर्वत के 6-7 हज़ार फुट ऊंचे स्थानों पर भी पहुंच जाते हैं, किन्तु वे वहां टिकते कम हैं। इसका कारण है कि एक तो वहां की सर्दी उनसे बरदाश्त नहीं होती, दूसरे

उन्हे अपने पहाड़ी भाई-बन्दो से ख़तरा रहता है

कौवे के रहने के सम्बन्ध में एक यही शर्त है कि वे वहीं रहेंगे, जहां मनुष्य का वास हो। मनुष्य यदि जंगल या रेगिस्तान में पहुंच जाये तो पीछे-पीछे कौवा भी पहुंच जायेगा और यदि सुन्दर-से-सुन्दर राजमहल में भी किसी मनुष्य का निवास नहीं है तो कौवा वहां पर कभी भी दिखायी न देगा। इसीलिए पुराने लोग कहा करते हैं कि जहां कौवे दिखायी दे जायें, समझ लो कि वहां अवश्य मनुष्य होगा या आने वाला होगा।

कौवे को मनुष्य की तरह संगठन अर्थात् मिलकर रहने का शौक है। वे झुंड-के-झुंड एक साथ रहते हैं। इतना ही नहीं, वे प्रायः हज़ारों की संख्या में एक ही पेड़ या आसपास के कुछ पेड़ों पर बसेरा करते हैं और दूसरे सवेरे साथ-ही-साथ अपने दिन के धन्धे पर रवाना हो जाते हैं।

सवेरे झुंड-के-झुंड कौवों का किसी जगह से गुज़रना और शाम को उसी प्रकार झुंड-के-झुंड लौटना किसने न देखा होगा ? सवेरे के समय कौवे तेजी से उड़ जाते हैं; क्योंकि वे रात-भर के भूखे होते हैं और उन्हें चारा चुगने की जल्दी होती है। परन्तु शाम

को अपने बसेरे की जगह पहुंचने के लिए उनकी वापसी दिन ढलने से घंटे-दो घंटे पूर्व से शुरू हो जाती है और अंधेरा होने तक जारी रहती है।

यद्यपि कौवा एक ढीठ और चालाक पक्षी है, पर उसका स्वभाव बड़ा निर्मल होता है। कौवे और कोयल के अंडे लगभग एक-जैसे होते हैं।

कौवे की दोस्ती

महेश्वर नगर से दूर नर्मदा नदी के किनारे एक बुद्धिमान और चतुर कौवा रहता था। एक बहुत बड़े और घने पेड़ पर उस कौवे का घोंसला बना हुआ था। उसी घनी छाया वाले पेड़ के नीचे एक सुन्दर हिरन भी रात बिताया करता था। कभी-कभी दिन की तेज धूप से बचने के लिए वह पेड़ की छाया के नीचे आराम से बैठकर दोपहरी भी काटता था। धीरे-धीरे हिरन और कौवे की अच्छी दोस्ती हो गयी और वे समय बिताने के लिए आपस में दुख-सुख की बातें भी करने लगे।

इस तरह कौवा और हिरन, दोनों प्रेमपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहे थे। एक दिन वह हिरन एक चालाक और दुष्ट लोमड़ी की आंखों में जंच गया;

क्योकि हिरन बडा सुडौल और सुन्दर था उसे देखते ही लोमड़ी के मुंह में पानी भर आया।

लोमड़ी तभी से उस हिरन का मांस चखने की तरकीबें सोचने लगी। एक दिन वह हिरन के पास एक दुखिया के रूप में गयी और उसने कहा—"मैं एक दुखिया और अभागिनी हूं। मेरा इस संसार में अपना सगा भाई कोई नहीं है, इसलिए मैं एक-एक घड़ी बड़ी बेचैनी से काटती हूं। मेरे भाई, तुम मेरे दोस्त बन जाओ। यह तुम्हारी बड़ी कृपा होगी।"

हिरन जितना खूबसूरत था, उतना ही स्वभाव का सरल भी था। उसने लोमड़ी को भी अपना मित्र बना लिया।

शाम हो जाने पर हिरन लोमड़ी को अपने स्थान पर लिवा लाया। वहां जब कौवे ने लोमड़ी को देखा तो हैरान रह गया। उसने हिरन से मन में चिन्तित होकर पूछा—"बहिन लोमड़ी तुम्हारे साथ यहां क्यों आयी है ?"

हिरन ने उत्तर दिया—"यह बेचारी दुखिया और अकेली है। मित्रता के लिए आकुल हो रही थी, मैं इसे यहां ले आया।"

कौवे ने कहा—"जिसे तुम आज से पहले नहीं

जानते थे, उससे मित्रता करना अच्छा नही ”

बीच में लोमड़ी बोल पड़ी—“लेकिन एक दिन तो यह हिरन और तुम भी एक-दूसरें से अनजान ही थे।”

और हिरन ने भी कहा—“मित्र कौवे, तुम्हारा कहना ठीक भी हो तो यह हमारा क्या ले लेगी यह एक कोने में पड़ी रहेगी और हमें भी एक साथी और मिल जायेगा।”

इस पर कौवा आगे कुछ न बोला और लोमड़ी हिरन के साथ-साथ रहने लगी। लेकिन तीन-चार दिन ही बीते थे कि वह हिरन से बोली—“पास में एक खेत फ़सल से लहलहा रहा है। चलो मित्र, एक रात उस खेत में चरने चलें।”

हिरन बड़ा खुश हुआ और लोमड़ी के बहकावे में आ गया। लोमड़ी उसे एक खेत पर ले गयी। उस दिन से वह हिरन रोज ही उस खेत में चरने जाने लगा, परन्तु कुछ ही दिन बीते थे कि उस खेत के रखवाले को इस बात का पता चल गया और उसने खेत में जाल बिछा दिया। खेत में जाल लग जाने के कुछ देर बाद रोज की तरह वह हिरन छलांगें मारता हुआ वहां पहुंचा और तुरन्त ही उस जाल में जा फंसा।

लोमडी एक तरफ छिपकर यह सब देख रही थी उसने हिरन को जाल में फंसा हुआ देखा तो बहुत प्रसन्न हुई और मन में सोचने लगी—"इस हिरन को तो यह जाल वाला किसान पकड़कर मार खायेगा और हिरन का मांस बड़ा मीठा और ताज़ा है।"

लोमड़ी हिरन के पास आयी और उसने चारों ओर घूम-फिरकर इधर-उधर देखा। हिरन ने उसे देखा तो वह बड़ा खुश हुआ और उससे बोला—"हे मित्र ! मुझे यहां से किसी प्रकार मुक्त करो। जैसे भी हो वैसे इस जाल को काट दो और यहां से जल्दी भाग चलो।"

लोमड़ी ने उसे तसल्ली दी—"हे मित्र, ज़रा धीरज से काम लो। सवेरा तो हो जाने दो। आज मेरा व्रत है और यह जाल तांत का बना हुआ है। इसे मैं अपने दांतों से नहीं छू सकती।"

इतना कहकर वह लोमड़ी वहां से चलकर एक झाड़ी में छिप गयी और जाल वाले किसान का इन्तज़ार करने लगी।

उधर हिरन के रात-भर न लौटने से कौवा बड़ी चिन्ता करने लगा। उसने सारी रात बड़ी बेचैनी से काटी थी और सवेरा होने पर भी जब हिरन वहां नहीं लौटा तो वह हिरन की खोज में निकल पड़ा और

इधर उधर भटकने लगा

भटकते-भटकते वह जाल में फंसे हुए हिरन के पास जा पहुंचा। कौवे ने पूछा—"मित्र ! तुम्हारी ऐसी दुर्गति कैसे हुई ?"

हिरन ने दुखी मन से कहा—"अगर मैं तुम्हारी बात मानकर इस दुष्ट लोमड़ी से मित्रता ही न करता तो यह आफ़त क्यों आती !"

कौवे ने पूछा—"लोमड़ी कहां है ?"

हिरन बोला—"वह दुष्ट कहीं छिपकर मांस खाने के मौके की ताक में लगी होगी।"

कौवे ने उसे धीरज बंधाते हुए कहा—"तुम धीरज रखो मित्र, उस दुष्ट लोमड़ी की दाल नहीं गलने पायेगी।"

हिरन ने पूछा—"आख़िर यहां से मेरे छूटने का उपाय क्या है ? अब तो ऐसा लगता है कि मुझे मरना पड़ सकता है।"

कौवे ने उसे समझाया—"मैं जैसा-जैसा कहता जाऊं तुम वैसा-वैसा ही करते जाना।" फिर कौवे ने हिरन को तरक़ीब सुझायी कि "अपना पेट फुलाकर अपने चारों ओर फैलाओ और सांस रोककर मुर्दे की तरह बनकर पड़े रहो। जब मैं 'कांव-कांव' करूं तो

उठकर फुर्ती से भाग जाना।"

हिरन ने कौवे की इस सीख को बड़े ध्यान से सुना और फिर वैसा ही किया। इतने में वह किसान खेत में आ पहुंचा। कौवा उसे देखकर उड़ गया और एक पास के पेड़ पर जा बैठा।

किसान ने हिरन को मुर्दा-सा पड़ा देखा तो उसने सोचा, यह हिरन तो सचमुच ही मर गया है। इसलिए उसने कोई परवाह न करते हुए जाल को उस पर से हटा दिया। जब किसान एक ओर बेफिक्री से जाल को समेटने में लगा हुआ था, तभी कौवे ने 'कांव-कांव' की आवाज़ जोर से लगायी और हिरन बड़ी फुर्ती से उठकर एकदम भाग खड़ा हुआ।

किसान ने हिरन को भागते देखा तो उसने गुस्से में उस पर अपना डंडा कसकर फेंका। वह डंडा पास ही झाड़ी में छिपी चालाक लोमड़ी के जाकर लगा और वह लोमड़ी वहीं ढेर हो गयी।

गिद्ध

गिद्ध को आकाशचारी मुरदाखोर पक्षी तो माना ही जाता है पर साथ ही यह पक्षियों मे सबसे अधिक

कुरूप भी है। काले-भूरे रंग वाला यह पक्षी मांस
मरे जीवों को खाता है। मृत चौपायों या जं
जानवरों के पड़े हुए शवों पर इसकी मीलों दूर
उड़ते हुए नज़र पड़ जाती है और कुछ देर में ही
एक से अधिक संख्या में उसके सड़े-गले मांस
अपना आहार बनाने आ पहुंचते हैं।

आकार में यह बहुत भारी-भरकम पक्षी होता है
सकी गरदन, सिर और पैर भूरे कत्थई रंग के ह
। गिद्ध कई प्रकार के होते हैं। सबसे बड़े गिद्ध

'गिद्धराज' कहते है। यह आमतौर से देखा जाता है। इसकी पीठ का रंग काला होता है। पीठ, टांगों और गरदन का ऊपरी हिस्सा भूरे रंग का होता है। पंखों के भीतरी भाग भी हलके भूरे होते हैं।

इसके कुरूप भारी शरीर से भले ही दुर्गन्ध आती है, किन्तु गन्दगी दूर करने में यह सहायक होता है। और बीमारी नहीं फैलने देता। यह बड़ा ही लालची होता है। 'गिद्ध' शब्द इसके लोभी होने का परिचायक है।

गिद्ध अपना नीड़ बहुत ऊंचे पेड़ की अति उच्च डाली पर बनाकर रहता है। मादा गिद्ध एक बार में केवल एक ही अंडा देती है। यह सफ़ेद और हलके कत्थई रंग का होता है।

शिवभक्त गिद्ध

एक था राजा ! उसे शिकार का बहुत शौक था। एक दिन वह जंगल में शिकार खेलने गया।

जंगल में उसे हरिणों का एक झुण्ड दिखायी दिया। बस, फिर क्या था—उसने तुरन्त उनके पीछे घोड़ा दौड़ा दिया। सारे हरिण घबराकर भागे। एक हरिण बेचारा पीछे रह गया।

राजा ने उस पर विष-बुझा तीर छोड़ दिया। राजा
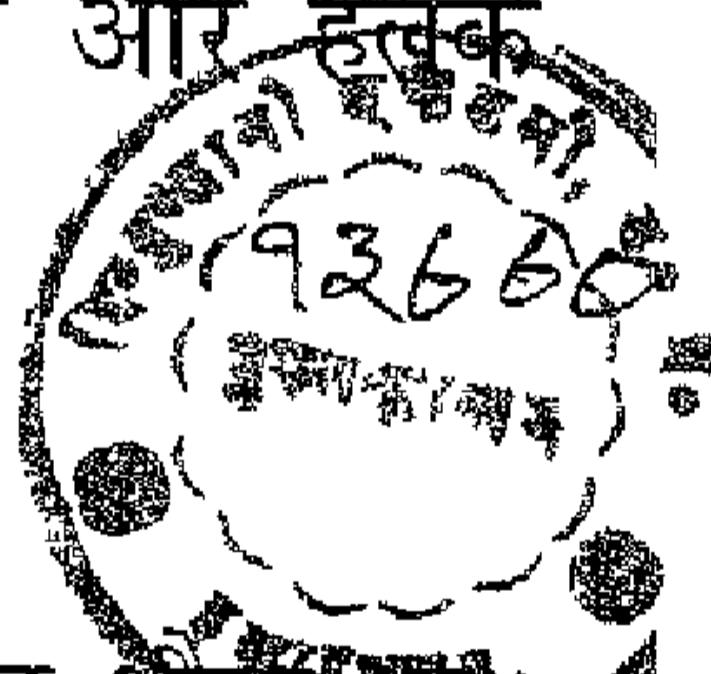
का दुर्भाग्य कहो या हरिण का भाग्य—निशाना चूक गया और तीर सनसनाता हुआ एक पेड़ में जा धंसा।

विष का असर पेड़ पर होने लगा और धीरे-धीरे वह पेड़ सूखने लगा। उसके हरे पत्ते सूखकर नीचे झड़ गये।

उस पेड़ पर एक गिद्ध का घोंसला था। वह उस पेड़ पर वर्षों से रह रहा था। उस पेड़ से उसे बहुत प्रेम था। पेड़ के बड़े-बड़े घने हरे पत्ते उसके घोंसले को वर्षा और कड़ी धूप से बचाते थे। गर्मी में शीतल हवा के झोंके देते थे, पर विषैले तीर ने पूरे पेड़ को निर्जीव कर दिया था।

गिद्ध पेड़ को छोड़कर कहीं और जाने को तैयार नहीं हुआ। जिस पेड़ ने उसे शीतल छांव दी थी, धूप से बचाया था, बरसात में उसकी रक्षा की थी—उसे वह इस मुसीबत की घड़ी में छोड़कर कैसे जा सकता था ?

उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि चाहे उसके प्राण ही क्यों न चले जायें, वह इस पेड़ को नहीं छोड़ेगा। वह तपती धूप में अपने घोंसले में चुपचाप बैठा रहता। अब वह पेड़ को एक क्षण को भी छोड़ने को तैयार नहीं था। उसने बाहर जाना बिलकुल छोड

दिया धीरे-धीरे उसका जमा किया दाना-पानी भी ख़त्म हो गया। अब गिद्ध भूखा रहने लगा। उसका शरीर बहुत कमज़ोर हो गया, पर उसने उस पेड़ से हटने का नाम भी न लिया। गिद्ध के इस प्रेम और त्याग को देख बेचारा पेड़ चुपचाप आंसू बहाता।

गिद्ध अब लगभग मरने को हो गया। उसका शरीर भी पेड़ की तरह सूखकर कांटा हो गया था। गिद्ध की इस त्याग की भावना से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उसे दर्शन दिया।

भगवान शिव को अपने सामने देख गिद्ध की आंखें खुशी से छलछला आयीं। उसने बड़ी कठिनता से उठकर भगवान को प्रणाम किया।

भगवान शिव ने पूछा—"हे गिद्ध, जब यह पेड़ तुम्हें सुरक्षित रखने के काबिल नहीं रहा तो तुम इसे छोड़कर किसी हरे-भरे वृक्ष पर क्यों नहीं चले जाते ?"

गिद्ध बोला—"प्रभु, मैं इसी पेड़ पर पैदा हुआ और यहीं बड़ा होकर जवान हुआ। इस पेड़ ने हर मौसम में मेरी रक्षा की। मुझे मीठे-मीठे फल खाने को दिये। अब यह सूखकर निर्जीव हो गया है और इसे किसी हमदर्द की ज़रूरत है। मेरे दुख-दर्द में जब इसने मेरा साथ दिया है तो मैं इसे ऐसी अवस्था में छोड़कर

कहां जाऊं ? क्या इसके त्याग और प्रेम को भूल जाऊं ? नहीं प्रभु, मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं पैदा यहीं हुआ हूं तो मरूंगा भी यहीं।"

गिद्ध की बात सुन भगवान शिव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उससे कोई भी एक वर मांगने को कहा।

गिद्ध ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभु, यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो इस वृक्ष को फिर से हरा-भरा कर दीजिये। ताकि जीवन के शेष दिन भी मैं यहां आराम से काट सकूं।"

"तथास्तु !" इतना कहकर शिव भगवान अन्तर्धान हो गये।

कुछ ही क्षणों में पेड़ फिर से हरा-भरा हो गया।

मुर्गा-मुर्गी

इस पालतू पक्षी से सभी परिचित हैं। इस नर पक्षी को मुर्गा तथा मादा को मुर्गी कहते हैं। किसी ज़माने में मनुष्य ने इसको जंगल से लाकर पालतू बनाया होगा। बाद में तो यह उसके लिए आहार का आधार बन गया और आर्थिक स्रोत का भी आधार हो गया। इसीलिए हमारे घरेलू पारिवारिक जीवन में इस पक्षी का महत्वपूर्ण स्थान बन गया है।

मुर्गी के अडे तो मनुष्य के आहार मे महत्वपूर्ण स्थान रखते ही हैं, परन्तु मुर्गे और मुर्गी का मांस तथ अंडों से निकले चूज़े भी मांसाहारियों के भोजन में शामिल हैं और बड़ी रुचि से इन्हें खाया जाता है।
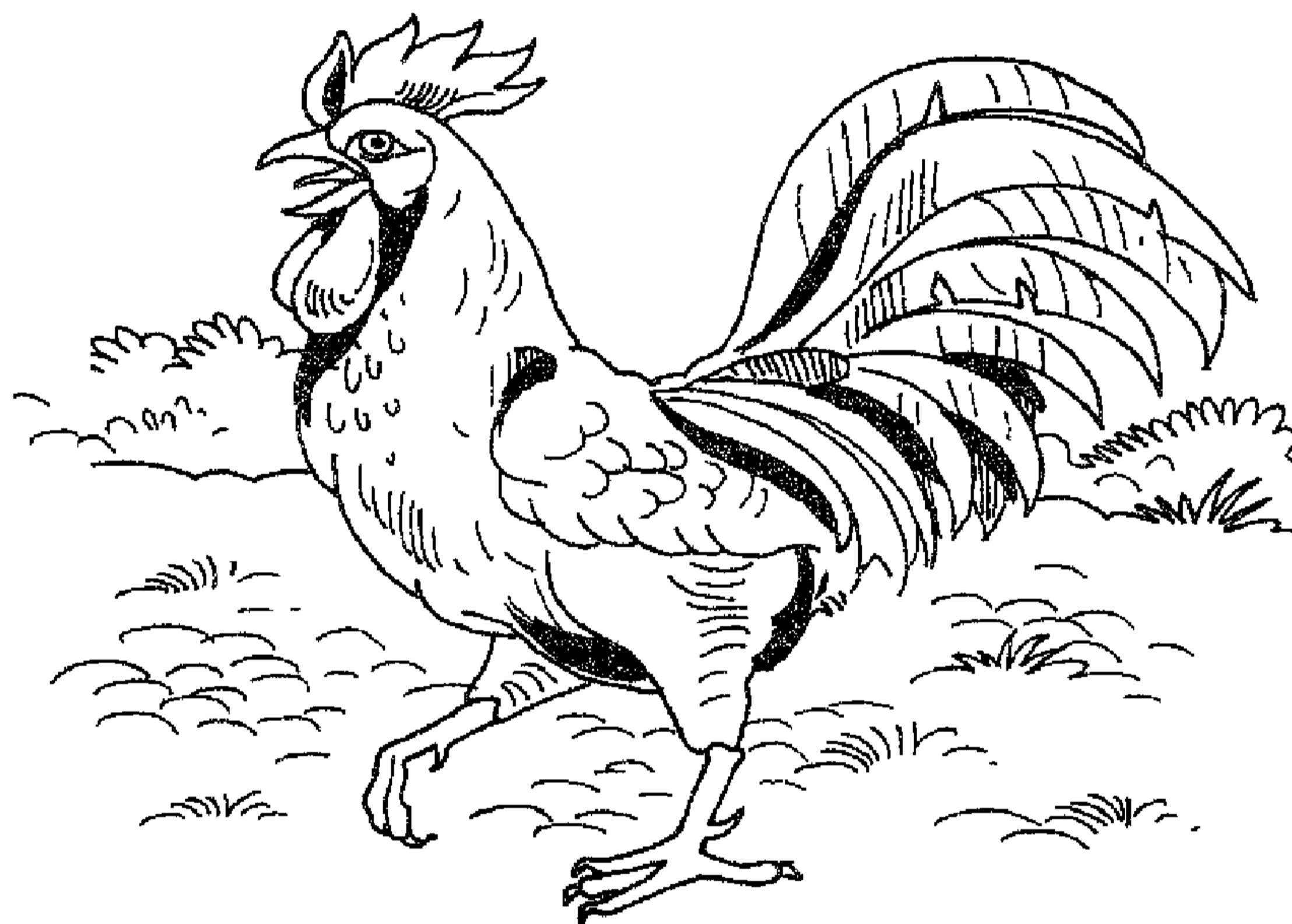
मुर्गी से अधिक सुन्दर मुर्गा होता है। मुर्गी की पूंछ उसके कद के अनुसार ही छोटी होती है, जबकि मुर्गा मुर्गी से बड़ा होता है।

मुर्गे के सिर पर ऊंचा उठा और लटकता हुआ लाल रंग का सुन्दर तथा सुडौल मुकुट होता है। उसकी चोंच का रंग पीला होता है और टांगें लाल होती हैं। इसके पंख कई रंगों के सुन्दर होते हैं। किन्तु

मुर्गी कद मे छोटी और काली, सफेद, कत्थई आदि किसी एक ही रंग की होती है। चोंच इसकी भी पीली होती है। ये समूह में रहते हैं। इनके आहार में अनाज के दाने, बीज और कीड़े-मकोड़े शामिल हैं। दाने चुगते हुए ये इधर-उधर विचरते हैं और निरन्तर आवाज़ करते रहते हैं। प्रातःकाल इसकी कुकड़ू-कूं की आवाज़ अवश्य सुनाई पड़ जाती है।

मुर्गी प्रतिदिन अपने बनाये मुलायम घास के घोंसले में एक अंडा देती है। छह-सात दिन के बाद वह दो-तीन दिन फिर अंडा नहीं देती। मुर्गी का घोंसला इतना बड़ा होता है कि उसमें दस या बारह अंडे समा जाते हैं। इसमें उड़ने की क्षमता अधिक नहीं होती।

कठफोड़ा

कठफोड़ा का नाम शायद सबने सुना होगा। इसका कठफोड़ा नाम क्यों पड़ा ? दरअसल इस पक्षी की चोंच बड़ी नुकीली और सख्त होती है। उस चोंच से वह पेड़ की डाल पर आघात कर उसे खोखला बना देता है। वह चोंच से लकड़ी खोद-खोदकर उसमें छिपे कीड़े-मकोड़े निकालकर खाता है। इसके नाम से इसका रूप जाहिर है।

कठफोड़ा बड़ा सुन्दर पक्षी है। इसकी पीठ सुनहरे पंखों से ढकी होती है। काले परों पर सफ़ेद बुंदकियां बड़ी सुन्दर लगती हैं। इसके सिर पर लाल कलंगी जैसी होती है। पेट पर पीले रंग पर काली बुंदकियां होती हैं। इस तरह काला, पीला, लाल तथा सुनहरी रंग इसमें चार चांद लगा देते हैं। कठफोड़े की पूंछ भी लम्बी और खूबसूरत होती है।

कठफोड़ा वैसे तो कोई भी कीड़ा-मकोड़ा खा जाता है पर उसे विशेष रूप से काली बड़ी चींटियां पसन्द हैं। फल भी बड़े चाव से खाता है कठफोड़ा।

कठफोड़ा एक बार में तीन अंडे देता है। अंडे सफ़ेद, चिकने और चमकदार होते हैं। पेड़ में गहरे गड्ढे बनाकर यह अपना घोंसला बनाकर उसमें अंडे

रखता है. मादा कठफोड़ा अक्सर मार्च और अगस्त के महीने में अंडे देती है।
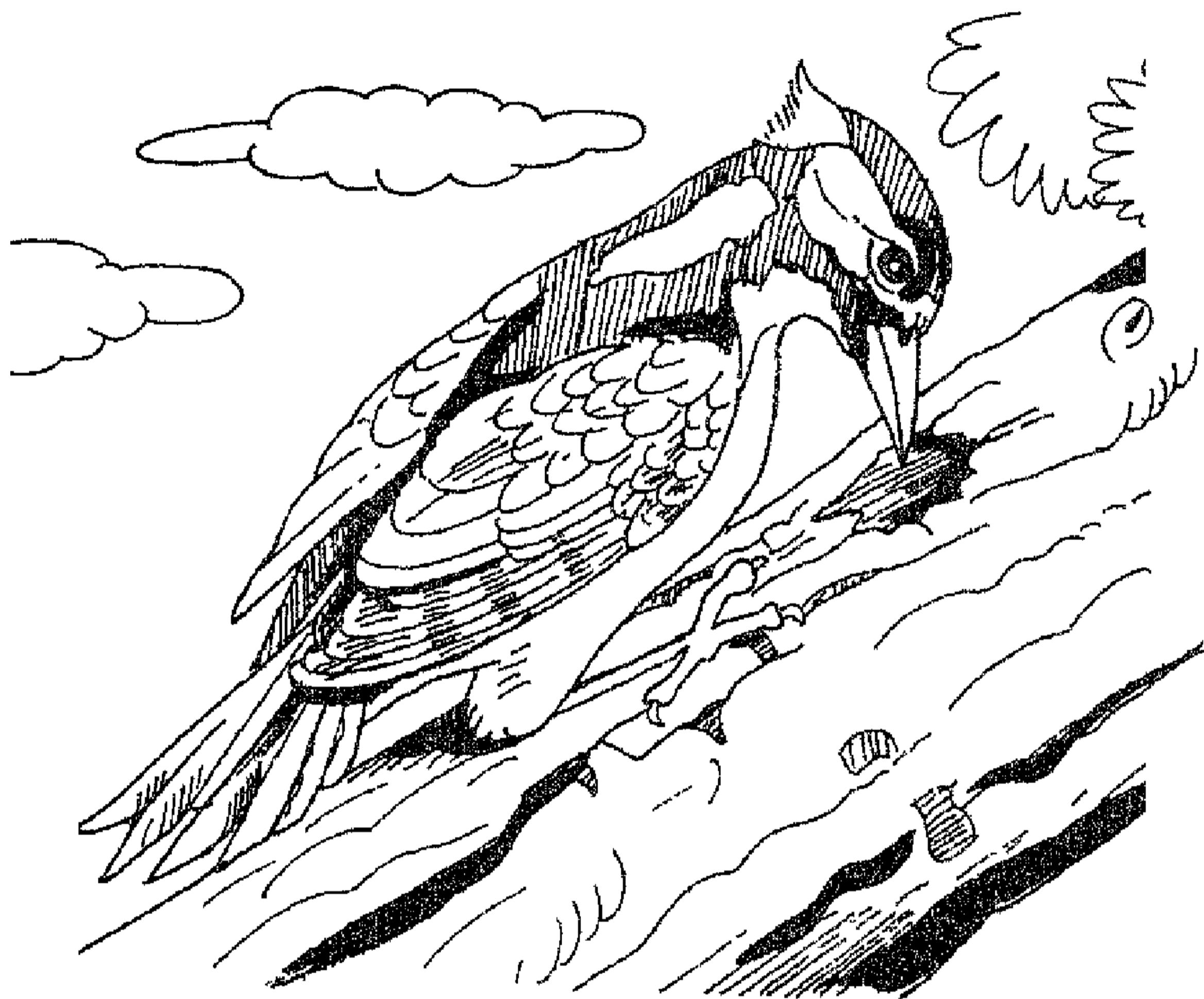
जब भी किसी पेड़ पर तुम्हें खट्-खट् की आवाज सुनायी दे और कोई रंग-बिरंगा पक्षी अपनी चोंच से शाखा पर चोट करता दिखायी दे तो समझ जाओ कि यह कठफोड़ा पक्षी ही है।

कर भला सो हो भला

एक कठफोड़े ने एक पीपल के पेड़ में अपना घोंसला बनाया। उसी पेड़ पर एक कबूतर का जोड़ा

भी रहता था कबूतर का घोसला काफ़ी खुला हुआ था। जबकि कठफोड़े ने पेड़ की डाल को खोदकर अपना घोंसला काफ़ी गहरायी में बनाया था। कठफोड़े के बच्चे कबूतर के बच्चों के साथ खेला करते थे। वे सभी बड़े मज़े से रह रहे थे।

एक दिन इतनी तेज़ बरसात हुई कि चार-पांच दिन रुकी ही नहीं। कठफोड़ा तो अपने घोंसले में मज़े में था, पर कबूतर और उसके बच्चे ठंड के मारे बुरी तरह कांप रहे थे। बच्चे कबूतरी से बुरी तरह चिपककर बैठे हुए थे।

जब ठंड और तेज़ हो गयी तो कबूतरी से रहा नहीं गया। वह कठफोड़े के पास गयी और बोली—"बहन, मेरे बच्चों से अब ठंड सहन नहीं हो रही है। घोंसले में पानी भी बहुत भर गया है। कृपया अपने घोंसले में थोड़ी जगह दे दो !"

कठफोड़ा चिड़िया को अपने मज़बूत घोंसले पर बड़ा नाज़ था। वह घमंडी भी थी। उसने कबूतरी को कोई जवाब नहीं दिया और मुंह दूसरी ओर फेर लिया।

बेचारी कबूतरी उत्तर न पाकर वापस लौट आयी।

रात में पानी और भी तेज़ बरसा तो कबूतरी

रोती-बिलखती फिर पहुंची। पर घमंडी कठफोड़े ने ऐसे समय उसकी ज़रा भी मदद न की।

उसी पेड़ के पास एक बिल था। उसमें एक सांप रहता था। जब उसके बिल में पानी भर गया तो वह भी नयी और ऊंची जगह की तलाश में निकला।

वह पीपल के पेड़ पर चढ़ गया। उस समय कठफोड़ा चिड़िया अपने बच्चों के लिए दाना लाने गयी थी।

जब कबूतर ने देखा कि सांप कठफोड़े के गहरे आरामदायक घोंसले की ओर बढ़ रहा है तो वह घबरा गया।

उसने कबूतरी से कहा—"तुम ज़रा ध्यान रखो, मैं सांप से निपटने के लिए अपने दोस्त मोर को बुलाकर लाता हूं। वरना यह सांप कठफोड़ा के बच्चों को खा जायेगा। वह दाना लेने बाहर गयी है।"

कबूतरी ने क्रोध में कहा—"तुम्हें क्या पड़ी है। मेरे बच्चे ठंड में सिकुड़ते रहे पर उसने थोड़ी जगह भी नहीं दी। क्या उसने हमारे बच्चों की परवाह की थी ?"

कबूतर ने मुस्कराते हुए कहा—"गुस्सा थूक दो। हमारे कर्मों का फल हमें मिलेगा और कठफोड़े को

उसके कर्मों का . यदि किसी की भलाइ करने का हम मौका मिला है तो हम ऐसा मौका क्यों गंवायें ?"

वह तेज़ी से उड़ता हुआ मोर के पास पहुंचा और उसे बुला लाया। सांप कठफोड़े के घोंसले के पास तक पहुंच चुका था। कठफोड़े के बच्चों ने भी सांप को आता देख लिया था। सो वे मारे भय के चीख-चिल्ला रहे थे।

मोर ने आगे बढ़कर सांप को ललकारा और वापस चले जाने को कहा। पर सांप भी कठफोड़े के बच्चों को देख चुका था सो उन्हें खाने के लालच ने उसे अन्धा बना दिया था।

उसने जब मोर की बात नहीं मानी तो मोर ने उसे मार डाला और उसी पेड़ की एक डाल पर टांग दिया। मोर ने कबूतर से विदा ली और वापस चला गया।

तभी वहां कठफोड़ा चिड़िया आयी। उसने डाल पर सांप टंगा देखा तो बुरी तरह घबरा गयी। वह तेज़ी से अपने घोंसले में गयी। जब उसने अपने बच्चों को सकुशल देखा तो उसने चैन की सांस ली।

तब बच्चों ने कठफोड़ा को सारी घटना बतायी। कबूतर की इस भलाई से वह शर्म से गढ़ गयी।

वह उसी समय कबूतर के घोसले में गयी और अपने बुरे व्यवहार पर क्षमा मांगी। साथ ही अपने बच्चों की जान बचाने के लिए उसका धन्यवाद किया।

फिर वह कबूतरी से बोली—"आओ बहन, आज से हम दोनों के परिवार एक जगह ही रहेंगे। चलो मेरे घोंसले में।"

इसलिए कहा है कि यदि कोई भलाई का काम करता है तो उसे अच्छा फल ज़रूर मिलता है, चाहे जल्दी मिले या देर से।

चील

मझोले आकार का मांसाहारी पक्षी चील अपने देश में जाना-पहचाना पंक्षी है। यह हर जगह दिखायी देता है। मुर्दा जानवरों का मांस इसका मनभाता आहार है।

चील की आक्रमणकारी आदत के कारण इसे ढीठ पक्षी समझा जाता है। मौका मिलते ही वह झपट्टा मारकर आदमी के हाथ से खाने की चीज़ें छीन ले जाती है। इस काम में वह इतनी फुर्तीली और सधी

हुई होती है कि क्या मजाल जो इसका झपट्टा व्यर्थ हो जाये। वह हरदम हमला करने के लिए तैयार रहती है। सधे हुए छापा मारने में वह बहुत चतुरता और निडरता से काम लेती है।
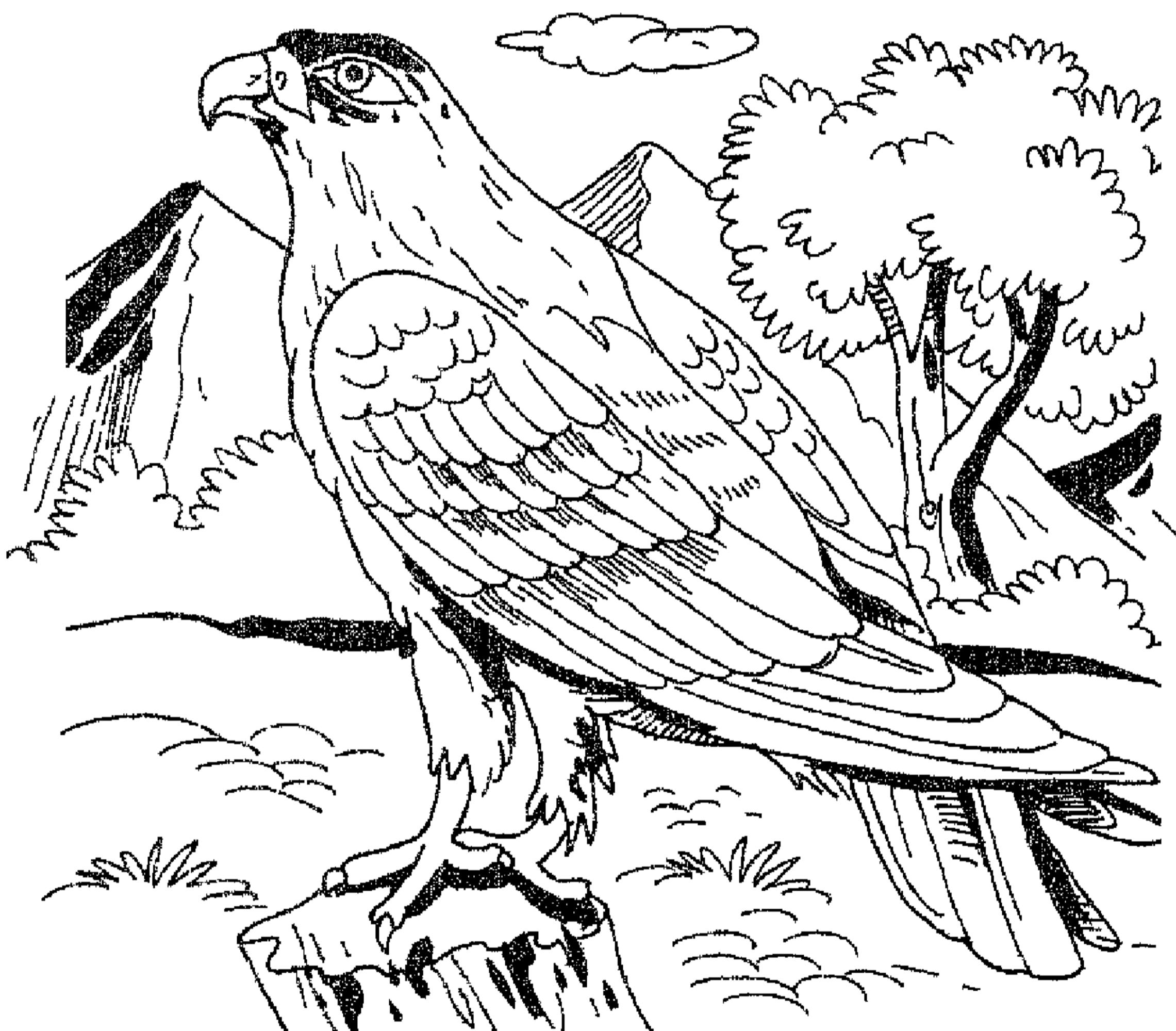
चील के शरीर की लम्बाई लगभग 24 इंच तक होती है। और पैर छोटे और पीले रंग के होते हैं। पैरों के ऊपरी आधे हिस्से पर चारों ओर छोटे-छोटे मुलायम पर होते हैं। लम्बे-नुकीले डैने, बाहर को निकले हुए उड़ान के काले पंख, पूरे शरीर पर

छोटे-छोटे भूरे बाल तथा पर और लम्बी दोफाकी दुम इसकी खास पहचान है। चील के शरीर का निचला हिस्सा हलका पीलापन लिये हुए भूरा होता है। चील का रहन-सहन बेढंगा और बहुत गन्दा होता है। इसलिए इसे कोई अच्छी नज़र से नहीं देखता। इसकी आंखें तेज़ और डरावनी तथा चोंच टेढ़ी, नुकीली और एक हथियार जैसी लगती है।

चील प्रायः गांवों और शहरों के आसपास आसमान में नीचे गन्दी चीज़ों की तलाश में मंडराती हुई दिखायी देती है। मुर्दा जानवरों को खाते हुए गिद्धों के झुंड के पास दो-चार चीलें अवश्य मौजूद पायी जायेंगी। मुर्गियों के चूजे उठा ले जाने में उसकी विशेष रुचि होती है।

चील अपने रहने के लिए किसी बड़े और ऊंचे पेड़ पर घोंसला बनाना पसन्द करती है। पतली-पतली लकड़ियों और कंटीली टहनियों को आपस में गूंथकर और रस्सियों के टुकड़े, लोहे के पतले-छोटे तार, गूदड़ तथा पत्तियों से वह अपना घोंसला बनाती है।

नर और मादा चील की शक्ल-सूरत और रूप-रंग में कोई फ़र्क नहीं होता। दोनों एक जैसे ही होते हैं। नर और मादा—दोनों मिल-जुलकर अपना घोंसला

बनाते ह

मादा चील के अंडे कुछ-कुछ गुलाबीपन लिये हुए सफ़ेद और लम्बे आकार के होते हैं। यह एक बार में चार अंडे देती है। नर और मादा—दोनों मिलकर अंडे सेते हं और बच्चों को चुगाते रहकर उनका पालन-पोषण करते हैं। उनकी रक्षा के लिए वे हर समय सतर्क रहते हैं।

चील हमारे लिए लाभदायक भी है। बस्तियों के आसपास पड़ी जानवरों की लाशों और बीमारी फैलाने वाली गन्दी वस्तुओं को साफ़ करके वह हमारी सहायता करती है। केंचुए और परदार कीड़े-पतंगे भी इसके आहार हैं।

चील की उड़ान देखने योग्य होती है। वह आसमान में बहुत ऊंचे तैरती हुई-सी सीधी उड़ती है। इससे चील की शक्ति, स्फूर्ति, उसके हल्केपन और हवा में उड़ने की कुशलता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

चील का बदला

एक पेड़ पर चील का घोंसला था। मादा चील ने अंडे दिये तो नर चील ने सारे काम का जिम्मा

अपने ऊपर ले लिया।

पर मादा चील अपने पति को बहुत प्रेम करती थी। अतः वह बोली—"सारा काम तुम्हीं करोगे तो बीमार पड़ जाओगे, थोड़ा-बहुत तो मुझे भी करने दो।"

इस पर नर बोला—"देखो, पास ही एक दुष्ट नाग का बिल है। वह मौका देखते ही अंडे हज़म कर जायेगा। अतः तुम अंडों को छोड़कर कहीं बाहर मत निकलो।"

पर एक दिन नर चील को वापस लौटने में देर हो गयी। मादा चील चिन्तित हो उठी। उसने थोड़ी दूर तक देख आने का विचार किया और उड़ चली।

नाग तो इसी ताक में था। वह झट पेड़ पर चढ़ा और अंडों को निगल गया।

इधर थोड़ी दूर जाने पर ही मादा चील को नर चील आता दिख गया। दोनों वापस लौट पड़े।

पर घोंसले में आकर देखा तो सारे अंडे गायब थे। नर चील ने नीचे देखा तो नाग का पेट फूला हुआ दिखायी दिया। वह फ़ौरन समझ गया कि यह सब इस दुष्ट की ही कारस्तानी है।

नर चील ने उससे बदला लेने की ठान ली।

दूसरे दिन ही वह उड़ता हुआ राजा के महल पर पहुचा। रानी तालाब में नहा रही थी। उसके कपड़े और जेवर तालाब के किनारे रखे थे।

चील ने झपट्टा मारकर हीरे का हार पंजों में दबाया और उड़ चली।

रानी ने यह देख शोर मचाया तो राजा के सिपाही चील के पीछे भागे।

चील ने वह हार लाकर नाग के बिल में ऐसा डाला कि वह बाहर भी दिखता रहे।

राजा के सिपाहियों ने नाग के बिल से जैसे ही हार खींचा—वह फुफकारता हुआ बाहर निकला। इसके पहले कि वह किसी को काटे—सिपाहियों ने लाठियों से उसे मार दिया।

इस तरह चतुराई से चील ने नाग से अपना बदल ले लिया।

उल्लू

यद्यपि उल्लू संसार का एक विवादग्रस्त पक्षी है, किन्तु फिर भी उसकी मान्यता पक्षियों में ही है। वह बहुत कम उड़ता है। वह ज़मीन पर कभी दिखायी

नही देता उसका निवास वृक्षा पर अथवा एकान्त खडहरो मे ऊपर रहता हे उसके बार मे जन साधारण में बड़ी भ्रान्तियां प्रचलित है।

यह कितनी विचित्र और आश्चर्य की बात है कि धन-धान्य, सौभाग्य और समृद्धि की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का वाहन माना जाते हुए भी उल्लू को मूर्खता और मनहूसियत का प्रतीक समझा जाता है।

उल्लू का सिर बिल्ली की तरह गोल, मुंह चपटा, कान बड़े, आंखें गोल बड़ी और कुछ पीली-सी होती हैं। दूसरे पक्षियों की भांति इसकी आंखें सिर के अगल-बगल न होकर ठीक सामने की तरफ़ होती हैं। इसीलिए इसकी आंखें केवल सामने की चीज़ें देख पाती हैं, परन्तु गर्दन लचीली होने के कारण यह अपने दायें-बायें भी देख लेता है।

उल्लू की आंखों की बनावट कुछ इस प्रकार की होती है कि इसको अंधकार में भी बखूबी दिखायी दे जाता है। इसकी सुनने की शक्ति भी बड़ी तेज़ होती है। घने अंधेरे में जब उल्लू को कम दिखायी पड़ता है तो उस समय वह अपने कानों द्वारा अपने शिकार की आहट पाकर उसे धर-दबोचता है।

रात का पक्षी होने के कारण उल्लू प्रायः अपना

रात के अंधेरे में ही करता है। इसके पंख
न होते हैं कि उनसे उड़ते समय ज़रा-सी
नहीं होती। इसीलिए रात के सन्नाटे में
शिकार को इसके आने का पता नहीं चल
यह आसानी से अपना शिकार मार लेता
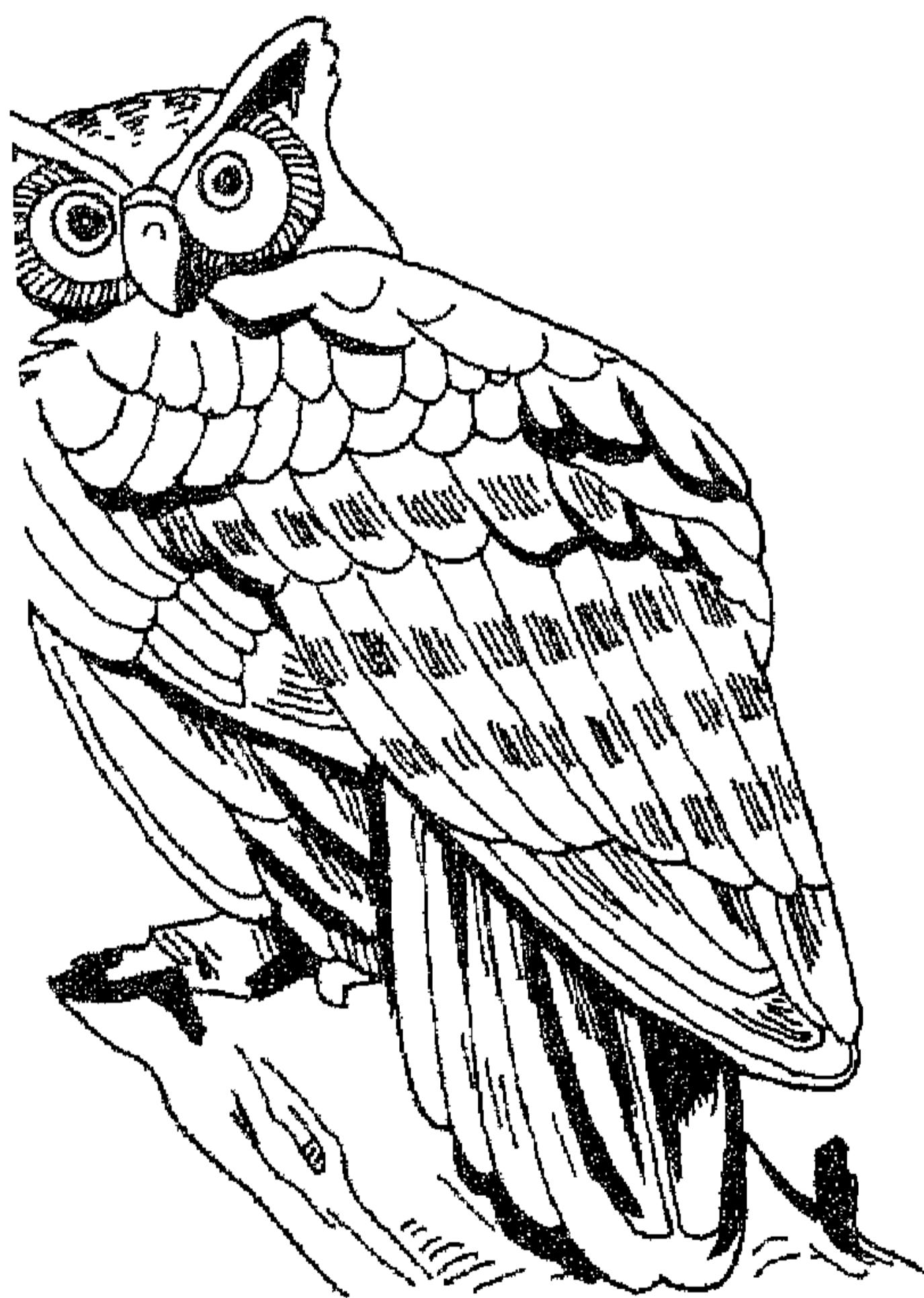
ी आवाज़ बहुत कर्कश होती है और यह
हूसियत के साथ चीखता है। रात को
भयंकर आवाज़ को सुनकर बहुत से लोग

डर जाते हैं और उन्हें ऐसा लगता है कि जैसे आस-पास का सब-कुछ खंडहर में बदलने वाला है।

उल्लू संसार के सभी देशों में और सब जगह पाया जाता है। इसकी अनेक जातियां होती हैं। इनमें जंगली उल्लू, स्क्रोपस उल्लू, बार्न उल्लू और चील की तरह दिखायी देने वाले उल्लू प्रमुख हैं। आकार-प्रकार और रंग-रूप के अनुसार भी उल्लू कई प्रकार का होता है। भारत में भी उल्लू की कई जातियां पायी जाती हैं, जिनमें दो मुख्य हैं—छोटा उल्लू 'खूसट' सफ़ेद कत्थई होता है और बड़ा उल्लू 'घुघ्घू' होता है। इसके सिर पर सींग जैसे दो गुच्छ होते हैं।

उल्लू इतना समझदार भी होता है कि जिस मौसम में इसे भरपेट आहार नहीं मिलता तो यह बच्चे पैदा करना बन्द कर देता है। इसकी मादा जनवरी से अप्रैल तक अंडे देती है और उनकी संख्या एक बार में तीन से पांच तक होती है। अंडों का रंग हल्का गुलाबी-सा होता है।

उल्लू मनुष्य का शत्रु नहीं, मित्र होता है। यह उन छोटे-मोटे जीवों का शिकार करता है, जो खेती और फ़सलों को हानि पहुंचाते हैं। यह अधिकतर चूहे, गिलहरी, कीड़े-मकोड़े, मेंढक, छिपकली और सांप

आदि का अपना आहार बनाकर मानव-जाति की यथेष्ट सेवा करता है।

रंगसाज उल्लू

बात उन दिनों की है, जब पशु-पक्षियों को काम-धंधा करके ही खाने को मिल पाता था।

एक उल्लू अपनी जीविका चलाने के लिए रंगसाज़ी का काम किया करता था। वह पक्षियों को रंगता था। पक्षी कभी अपने को लाल रंगवाते, कभी पीला, कभी नीला और कभी दो-दो, तीन-तीन रंगों से एक साथ रंगवाते। जैसे मुंह पीला तो पंख लाल और पेट नीला आदि।

एक दिन एक कौवा उसके पास आया। वह बहुत लालची और कंजूस था—जैसा कि हर कौवे का स्वभाव होता है।

कौवा बोला—"भाई उल्लू, मुझे भी तुमसे रंग करवाना है, पर रंग ऐसा पक्का हो कि बार-बार रंगवाने की ज़रूरत न पड़े। रंग एक ही हो। मैं ज़्यादा बन-ठनकर रहना पसन्द नहीं करता।"

उल्लू ने कहा—"ठीक है कौवे भाई, मैं एक ही रंग से तुम्हें चमका दूंगा।"

हां एक बात और " कौवा बीच में ही बोल पड़ा—"रंग पक्का होने के साथ-साथ सस्ता भी होना चाहिए। मैं बहुत ज़्यादा महंगा रंग नहीं चाहता।"

उल्लू ने अपनी कूची उठाई और बोला—"अच्छी बात है। मैं तुमसे ज़्यादा पैसे भी नहीं लूंगा।"

तब उल्लू ने सफ़ेद कौवे को लाल रंग से रंग दिया।

कौवा झल्लाकर बोला—"अरे ! यह क्या रंग लगाया है ? यह भी कोई रंग है ? तुम तो बिलकुल अनाड़ी रंगसाज हो। कोई गहरा-सा रंग लगाओ।"

इस पर उल्लू झल्ला गया—"रंग तो मैंने एकदम खिलता हुआ ही लगाया था। खैर, लाओ दूसरा कोई गहरा रंग लगा देता हूं। पर गहरे रंग से तुम्हारी आंखें खराब न हो जायें। इसलिए आंखों पर पट्टी भी बांधनी होगी।"

उल्लू ने कौवे की आंखों पर पट्टी बांध दी। वह झल्ला तो गया ही था। उसने गहरा काला रंग कौवे के शरीर पर पोत दिया।

जब कौवे ने रंग देखने के लिए आंखों से पट्टी उतारी तो काला रंग देखकर आगबबूला हो गया।

उल्लू ने मुस्कराकर कहा—"सस्ते में पक्का और

टिकाऊ रंग तो यही हो सकता था।''

यह सुन कौवा उल्लू को मारने दौड़ा।

उल्लू भागकर पहाड़ी गुफ़ा में छुप गया।

बस तभी से कौवा उल्लू को ढूंढ रहा है। उल्लू भी कौवे के डर से दिन में बाहर नहीं निकलता। रात में कौवे के सो जाने पर ही वह बाहर निकलता है।

यही कारण है कि उल्लू पेड़ के बजाय अंधेरी गुफ़ाओं में रहना पसन्द करता है। और कौवे के काला होने का कारण भी उल्लू की कारस्तानी है।

हंस

हंस हमारे देश का अति सुन्दर पवित्र पक्षी है। यह किसी तालाब या झील में ही संयोगवश दिखायी दे जाता है अथवा किसी चिड़ियाघर में रखा जाता है। यह पक्षी अब बहुत कम रह गया है। यही कारण है कि इसे बहुत थोड़े लोग देख पाते हैं।

सुन्दर शरीर के कारण इसे पक्षियों में सर्वाधिक सम्मान प्राप्त है। इसका रंग शुभ्र सफ़ेद होता है तथा गरदन लम्बी और पैर छोटे-छोटे। इसकी ध्वनि मधुर होती है।

हस के बारे मे मान्यता है कि यह दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है। इसी कारण इसे
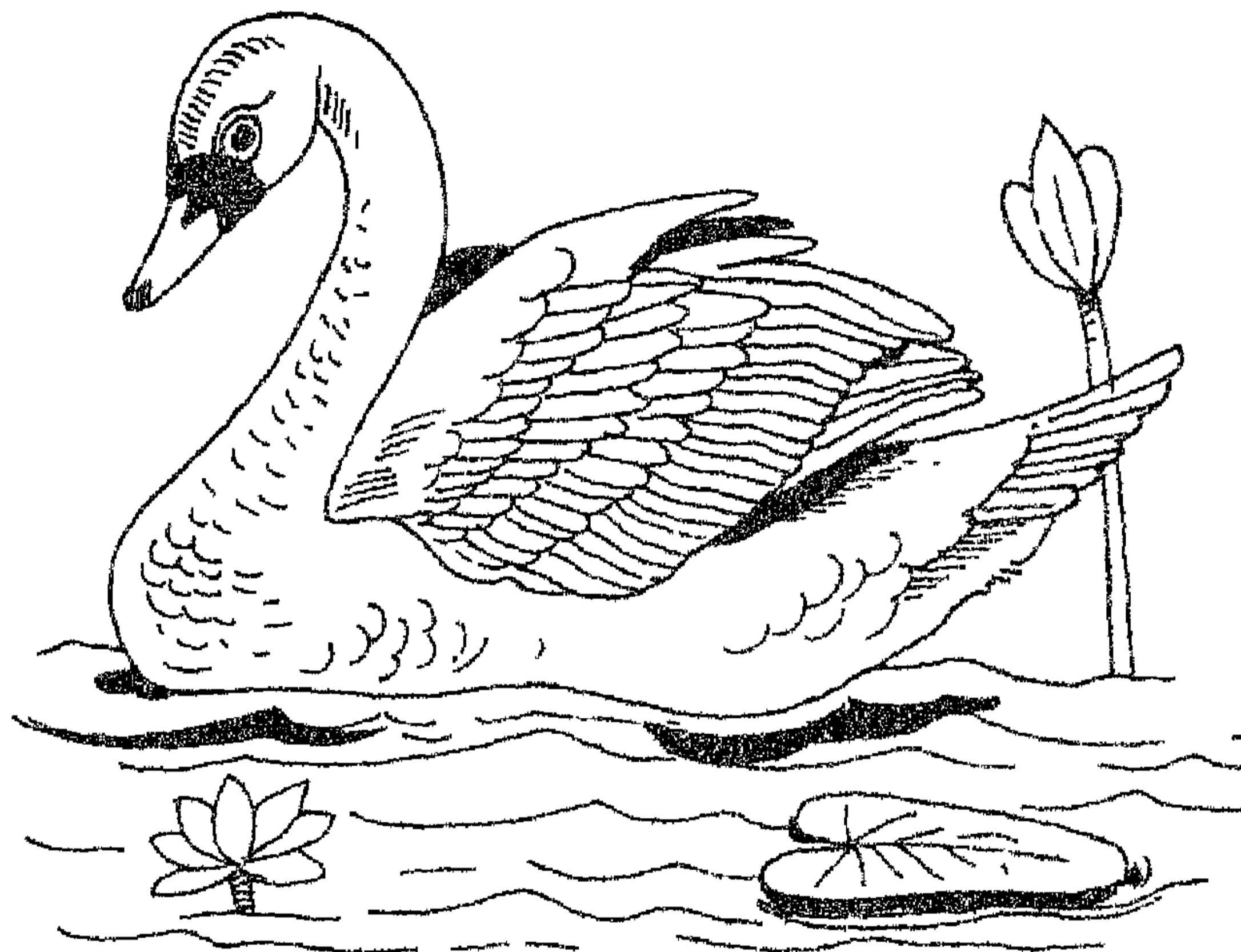
'नीर-क्षीर विवेकी' की संज्ञा दी गयी है। सन्देश-वाहक का कार्य भी ये हंस बड़ी कुशलता से करते आये हैं। प्राचीन साहित्य में हंस के बारे में अनेक सुन्दर वर्णन आये हैं। नल-दमयन्ती की प्रसिद्ध कथा में हंस के दमयन्ती का सन्देशवाहक बनने का बड़ा मनोहर वर्णन है। संस्कृत के ग्रन्थों में हंस को मानसरोवर में रहने वाला बताया गया है। इतना ही नहीं, हिमालय नर्वतराज की नीलवर्ण मनोहर झील मानवरोवर की

शोभा भी हंसों और कमल पुष्पों के कारण है। हंस अकेला नहीं, झुंड के साथ रहता है।

हंस जल-पक्षी है, किन्तु यह बहुत दूर-दूर तक उड़ने की क्षमता रखता है। इसकी स्थल पर मन्द-मन्द चाल से किसी सुन्दर बाला की गति को उपमित किया जाता है। इसके विषय में यह भी धारणा है कि यह मोती चुगता है। हमारे धार्मिक साहित्य में हंस को सरस्वती और ब्रह्मा का वाहन बताया है। चिड़ियाघरों में इसे स्वच्छ पानी में रखने की व्यवस्था की जाती है।

कौवा चला हंस की चाल

एक सरोवर के किनारे बहुत-से पक्षी रहा करते थे। गर्मी के मौसम में वहां एक हंसों का जोड़ा भी आ जाता था।

उनके आते ही सारे पक्षी खुश हो जाते थे। कारण, हंस उन्हें अपनी यात्राओं की सुन्दर-सुन्दर कहानियां सुनाया करते थे। पक्षियों को कहानियों में बड़ा मज़ा आता था।

जब हंस वापस जाते तो सारे पक्षी उदास हो जाते थे और उनके आने की राह देखते रहते।

कौवा यह सब देख जलभुन जाता था। पर कुछ कहता न था।

गर्मियों में एक बार हंस कहानियां सुना रहे थे। सारे पक्षी बड़े ध्यान से सुन रहे थे कि कौवा से न रहा गया।

कौवा बोला—"अरे, इससे बढ़िया कहानियां तो मैं सुना सकता हूं। मैंने भी बड़ी दूर-दूर तक की यात्राएं की हैं।"

इस पर मोर बोला—"रहने दो कौवे भाई ! इन हंसों के मुक़ाबले तुम इतना उड़ भी नहीं सकते।"

तब ज़िद में आकर कौवा बोला—"तो हो जाये मुक़ाबला। देखें कौन सबसे लम्बी दूरी तय करता है।"

हंसों ने कौवे को बहुतेरा समझाया, पर वह ज़िद्दी न माना और उल्टे हंसों को ताने मारने लगा—"अब घबराते क्यों हो, कर लो न मुक़ाबला।"

आख़िर हंसों और कौवे ने उड़ना शुरू किया। वे घंटों उड़ते रहे। कई नदी-नाले, गांव, शहर पार कर लिए। अब वे समुद्र के ऊपर से उड़ रहे थे। चारों ओर पानी-ही-पानी था। कौवा बुरी तरह थक चुका था। पर घमंड के मारे ज़ाहिर नहीं होने दे रहा था।

हंस समझ गये थे।

उनमें से एक ने कहा—"कौवे भाई, यदि तुम थक गये हो तो हमारी पीठ पर आकर बैठ जाओ।"

"नहीं-नहीं, मैं तो वैसे ही नीचे की ओर देख रहा हूं। मैं थका नहीं हूं, तुम अपना काम करो।"

पर कुछ दूर और उड़ने के बाद कौवा लड़खड़ाने लगा। परन्तु उतरने की कहीं जगह थी ही नहीं। वहां तो चारों ओर पानी-ही-पानी था।

अन्त में कौवा थककर समुद्र में जा गिरा और मर गया।

बगुला

अपनी लम्बी चोंच और टांगें भी लम्बी होने के कारण बगुला सहज ही पहचाना जा सकता है। किन्तु इसकी ख़ास पहचान तो यह है कि पानी की कम गहराई में किनारे के पास यह केवल एक टांग पर अपने ऊंचे और सफ़ेद शरीर को साधे हुए आंखें मूंदे ध्यान में लीन किसी ऋषि-मुनि की तरह खड़ा रहता है। जान-बूझकर नहीं, बल्कि इसकी प्रकृति ही इस प्रकार खड़ा रहने की है। इसका आहार मछली है।

बगुला का रंग भी सफ़ेद होता है तथा टांगें, चोंच

गरदन लम्बी। यह आवश्यकता पड़ने पर ही
। है, किन्तु बगुला उड़ने में तेज़ होता है औ
ा आकाश में समूह के रूप में वक्र-पंक्ति बनाकर
। है। उड़ते हुए बगुलों की अर्द्धचन्द्राकार पंक्ति
ही 'बलाका' कहा जाता है।
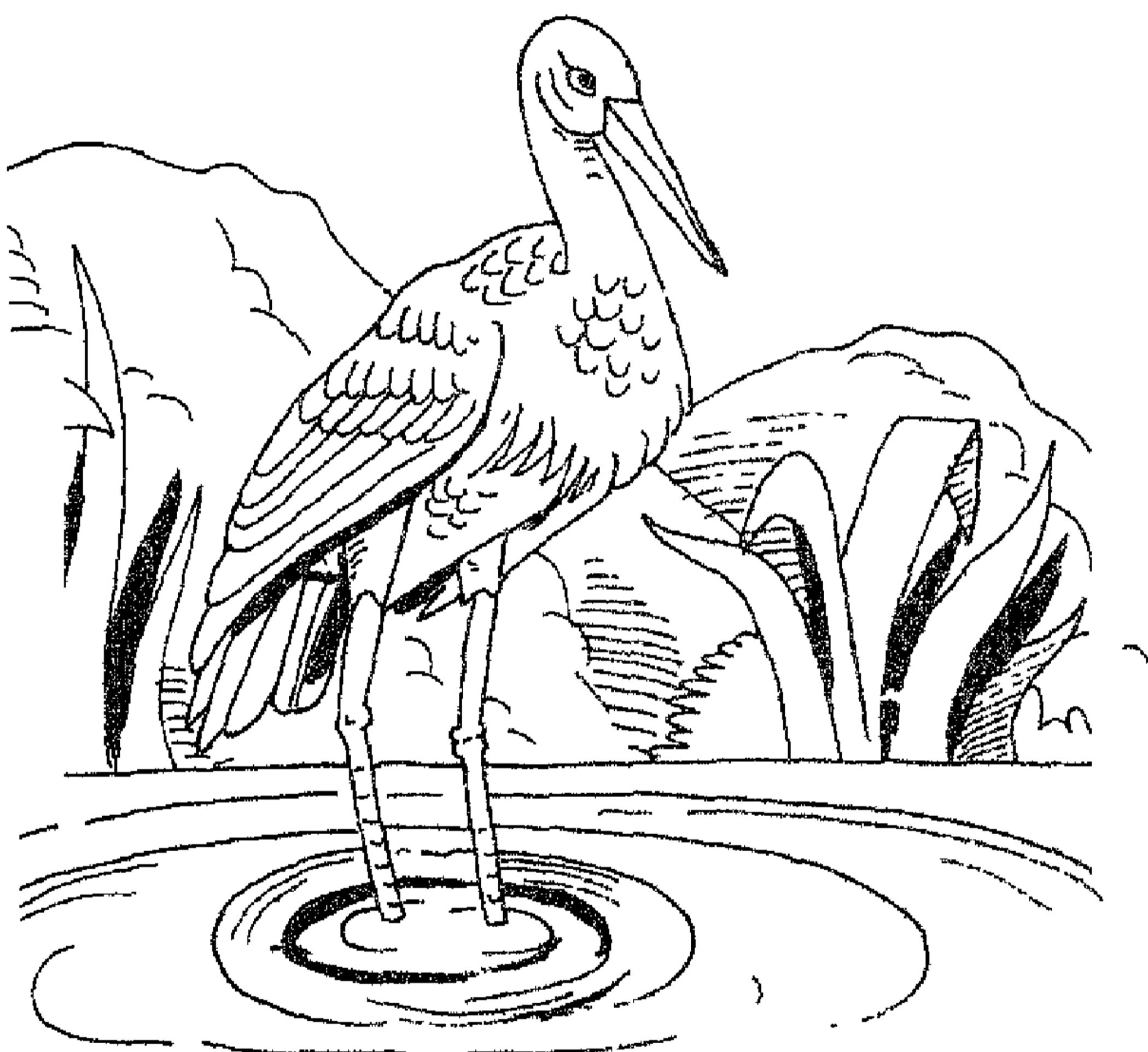
ंस्कृत के 'बक' से 'बग' होकर तथा 'ला' प्रत्यय
र 'बगुला' शब्द की उत्पत्ति हुई। कोई-कोई
। संस्कृत के ही 'बंक' (कुटिल) से इसकी
ते बताते हैं। उनका कहना है कि मछलियों का

शिकार करने के लिए यह एक टांग पर खड़ा होकर ध्यान लगाता है, ताकि मछलियां उसके पास धोखे में आयें और जब उसे विश्वास हो जाता है कि मछलियां पास आ गयी हैं, तब यह उन्हें पकड़ लेता है। सम्भवतः इसकी इस कुटिल (बंक) चाल के कारण ही इसके लिए 'बक' शब्द लागू हुआ। जल-पक्षियों मे हंस और सारस की भांति यह भी श्वेतरंगी एक सुन्दर जल-पक्षी है।

बगुला बहुधा जल के किनारे पाया जाता है तथा पानी में 'कोक-कोक' आवाज़ करता दिखायी देता है।

करछिया बगुला—बगुले कई प्रकार के होते हैं। इनके कई रंग-रूप होते हैं। ये सभी बगुले छिछले पानी के किनारे रहते हैं और मछली, मेंढक, घोंघे तथा पानी के दूसरे कीड़े पकड़कर खाते हैं। इसी कारण प्रकृति ने इन्हें लम्बी टांगें, पतली और लम्बी गरदन तथा तेज़ चोंच दी है, जिससे मछली और पानी के दूसरे कीड़े छूटकर नहीं जाने पाते। करछिया बगुले की सुडौलता सुन्दर होती है। वह कद में छोटा होता है। उसके कद की लम्बाई आधा मीटर के लगभग होती है। अपने छोटे कद और काली चोंच तथा काले पैरों के कारण दूसरे बगुलों के बीच उसे सहज ही पहचाना जा सकता है। इसके अलावा बडी जाति के बगुले

जहां अकेले रहना पसन्द करते हैं, वहां यह गिरोहों में रहना और घूमना पसन्द करता है और रात को बसेरा भी झुंडों में ही कर लेता है। कीड़ों-मकोड़ों की खोज में यह घास में भी घूम आता है।

करछिया बगुला हमारे देश का बारहमासी पक्षी है। इसके नर और मादा—दोनों एक-से रंग-रूप के होते हैं। जोड़ा बनाने के दिनों में इसके सिर में दो पतली कलंगियां निकल आती हैं और इसकी पीठ तथा छाती बहुत सुन्दर और चमकदार परों से सज जाती हैं। इसके सिर की कलंगियों को राजा-रईस लोग अपनी पगड़ियों और मुकुट में सजावट के लिए लगाते हैं। इधर अभी तक स्त्रियों के फ़ैशन में भी इन कलंगियों का रिवाज था और इनकी मांग बहुत बढ़ गयी थी। इस मांग को पूरा करने के लिए सिन्ध में करछिया बगुलों को बाक़ायदा पाला जाता था। परन्तु अब उनकी पहले जैसी मांग नहीं रही है।

इनके जोड़ा बनाने का समय बहुत कुछ वर्षा ऋतु पर निर्भर करता है। उत्तर भारत में जुलाई से अगस्त तक और दक्षिण भारत में नवम्बर से फरवरी तक इनके जोड़ा बनाने का समय रहता है। करछिया बगुले चूंकि गिरोहों में रहते हैं और बसेरा लेते हैं इसलिए ये अपने घोंसले भी झुंड में ही बनाते हैं। ये अपने

तिनकों स बने घोंसले जमीन से काफ़ी ऊंचाई पर बनाते हैं। बगुला मादा एक बार में लगभग पांच अंडे देती है, जिनका रंग समुद्री हरा या नीलापन लिए हरा होता है।

चतुर बगुला

एक नदी के किनारे बहुत सारे बगुले रहते थे। उनका राजा था काष्टकूट। बगुला राजा अपनी प्रजा का बड़ा ख़याल रखता था। प्रजा भी अपने राजा को बहुत चाहती थी। पर राजा बूढ़ा हो चुका था। वह अपने उत्तराधिकारी के बारे में चिन्तित रहा करता था। अब तक उसे कोई ऐसा योग्य बगुला नज़र नहीं आया था, जो राजा का पद संभाल सके।

बगुले रोज़ सुबह नदी में से मछलियां मारकर खाते और अच्छी-अच्छी मछलियां अपने राजा के लिए ले जाते थे।

एक बार अचानक कहीं से एक लकड़बग्घा उधर आ निकला। उसने बगुलों पर हमला किया तो सारे बगुले वहां से भाग खड़े हुए। अब तो लकड़बग्घा रोज़ नदी किनारे आ जाता और बगुलों को परेशान करता। बगुले भूखे ही भाग जाते। इस प्रकार कई दिन बीत गये। बिना मछलियों के बगुले भूखे मरने लगे।

राजा ने वह स्थान छोड़कर दूसरी जगह अपना

अड्डा बनाया पर ~ तो जस हाथ धोकर पीछे पड़ गया था। वह वहां भी आ पहुंचा। जो भी बगुला उसकी पकड़ में आ जाता, वह उसे मार देता।

एक बार लकड़बग्घे ने एक मछली खा ली। मछली का स्वाद उसे भा गया। अब वह चालाकी से काम करने लगा। जब सुबह बगुले आते तो वह कुछ न बोलता। पर जब बगुले मछलियां मारकर नदी के किनारे लाते, तब वह उन्हें भगाकर खुद मछलियां चट कर जाता।

आख़िर तंग आकर बगुला राजा काष्टकूट ने घोषणा करवा दी कि जो भी इस दुष्ट लकड़बग्घे को मार देगा, वही राजा के पद का अधिकारी होगा।

बहुत-से बगुलों ने तरह-तरह की योजनाएं बनायीं, पर कोई भी सफल न हुआ। बल्कि लकड़बग्घे के हाथों कई बगुले जान से हाथ धो बैठे।

एक युवा बगुले ने भी लकड़बग्घे को मारने का बीड़ा उठाया।

उसने सभी बगुलों को कहा कि कल सुबह कोई भी नदी किनारे न जाये, केवल मैं जाऊंगा।

अगले दिन सुबह ही बगुला नदी में मछली मारने जा पहुंचा। मछली मार-मारकर जैसे ही वह किनारे पर लाया कि उसने लकड़बग्घे को अपनी ओर तेज़ी से आते देखा। वह मछलियां छोड़कर वहां से भाग

खड़ा हुआ

जब उसे भागकर आता हुआ अन्य बगुलों ने देखा तो उन्होंने उस बगुले की बड़ी हंसी उड़ायी।

एक बोला—"तुम तो बड़े बहादुर बनते थे। अब दुम दबाकर क्यों चले आये ?"

वह बगुला शान्त स्वर में बोला—"मैं डर से भागकर नहीं आया हूं। तुम लोगों को बुलाने आया हूं। चलिये मेरे साथ नदी किनारे।"

सारे बगुलों ने नदी किनारे जाकर देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गये। लकड़बग्घा मरा पड़ा था।

राजा ने उस बगुले से पूछा—"आख़िर तुमने इसे कैसे मार दिया ?"

वह बगुला बोला—"मैंने मछली में ज़हर मिला दिया था।"

राजा बगुला ने उसे राजा बनाने की घोषणा उसी समय कर दी।

चकोर

हमारे देश के पक्षियों में चकोर का नाम जाना-पहचाना है। संस्कृत साहित्य में अनेक प्रसिद्ध कवियों ने इसकी सुन्दरता, स्वभाव और गुणों का मनमोहक वर्णन किया है।

चकोर पक्षी सलेटी और बादामी आकर्षक रंगो
होता है। इसकी चोंच और आंखें लाल रंग की
हैं तथा शरीर पर सफ़ेद चित्तियां होती हैं। कन्धों
मस्तक पर कत्थई-से लाल रंग की झलक रहती
पंखों के नीचे का भाग श्याम और अख़रोटी रं
रेखांकित होता है, चोंच की भांति पैर भी लाल
के होते हैं।
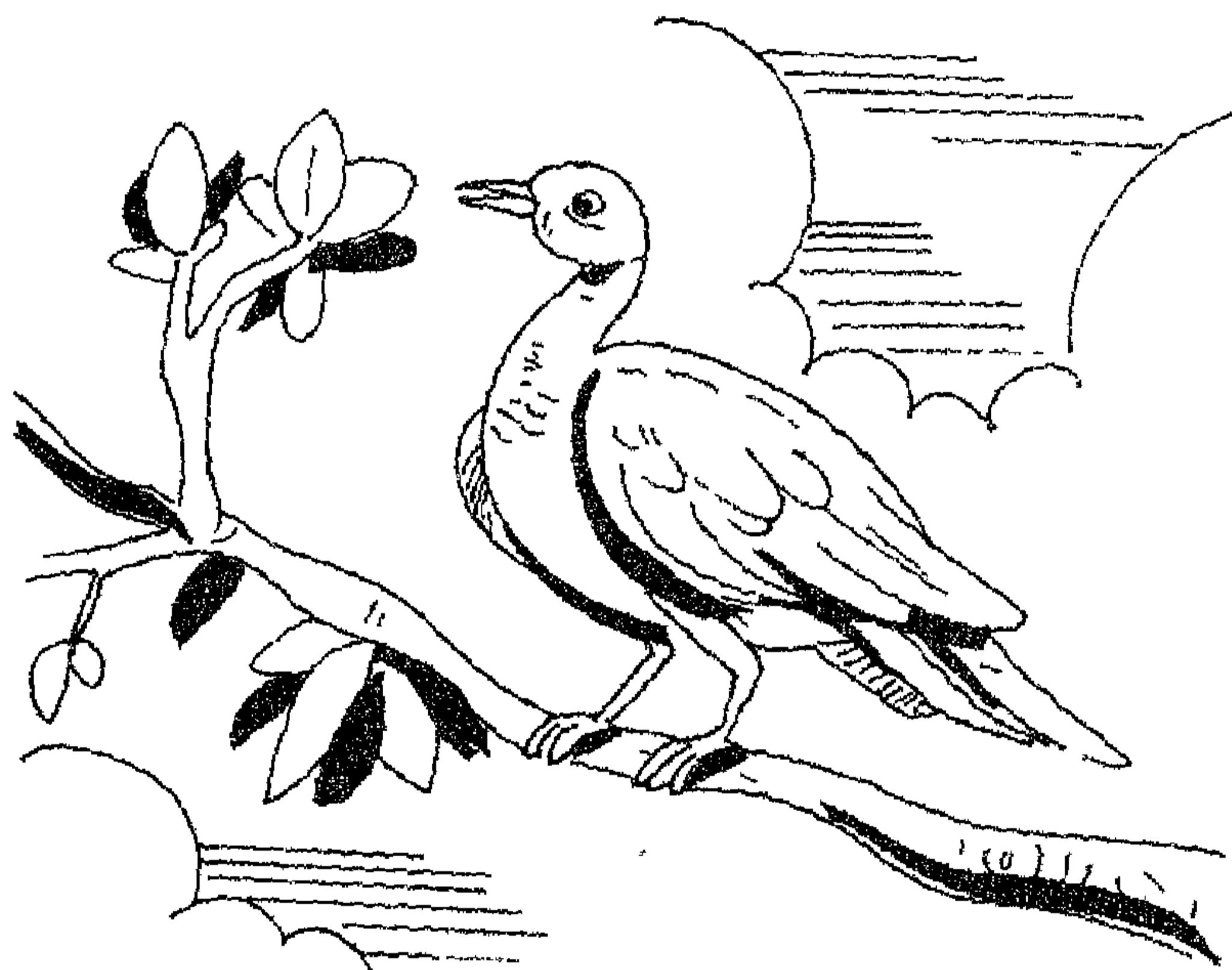
चकोर के आहार में कन्द-मूल, हरी सब्ज़ी,
और जौ शामिल हैं। वह कीड़े भी खाता है
दीमकें उसें विशेष पसन्द हैं। दाने चुगते समय
कीचड़ के कण भी निगल जाता है।

वहुधा यह पक्षी पत्थरों और पेड़-पौधों से मुक्त उजाड़ पहाड़ियों में, विशाल पत्थरों के बीच संकरी उपत्यकाओं में अथवा नदी-स्रोतों के कृषि-योग्य पाटों में घूमता हुआ दिखायी देता है। सामान्यतया यह चार या पांच के समूहों में रहता और विचरता है। सर्दियों में चकोरों के झुंड-के-झुंड अपने वाल-बच्चों के साथ हिमालय के ऊंचे स्थानों से नीचे उतरने लगते हैं। निर्जन स्थानों में सूर्योदय के बाद चकोर अनेक समूहों में अलग-अलग आकर जलाशयों में पानी पीने के लिए इकट्ठे होते हैं। पश्चिम हिमालय में बारह से पन्द्रह हज़ार फुट तक की ऊंचाई पर यह मिलता है। नेपाल और पंजाव में भी यह दिखायी देता है।

जंगली और पालतू चकोरों का अध्ययन करके एक पक्षी-विशेषज्ञ ने लिखा है कि वह चौदह प्रकार की आवाज़ें करता है। इनमें भय-सूचक, आमन्त्रण-सूचक और व्यथा-सूचक आदि आवाज़ें भी होती हैं।

मादा चकोर अथवा चकोरी गर्म प्रदेशों में अप्रैल के प्रारम्भ में और हिमालय जैसे ठंडे प्रदेशों में जून-जुलाई में अंडे देती है। हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में वड़ी मनोरंजक और कौतुकभरी बातें मिलती हैं। इन ग्रन्थों में गंधमादन, कैलाश पर्वत, इन्द्रनील पर्वत में गंगातीर, कान्यकुब्ज अर्थात कन्नौज और विन्ध्यावटी आदि स्थल चकोरों के निवास-स्थान बताये

गये है।

चकोर के बारे में यह धारणा है कि यह चन्द्रमा की किरणों का रस-पान करके जीवित रहता है। इसी कारण इसे 'चकोर' कहा गया है, किन्तु इसमें वास्तविकता नहीं जान पड़ती। एक संस्कृत ग्रन्थ में दिये वर्णन के अनुसार, "यह ऊंचे शरीर का होता है। दोनों पंख और बगलें सफ़ेद रंग से सुशोभित दिखती हैं। शेष अंग काला अथवा नीला होता है। चांदनी का यह नियमित पान करता है और उसके अभाव में कमज़ोर हो जाता है। रात को विचरण करने वाला, मादा के आगे-पीछे रहने वाला यह चकोर प्रायः पहाड़ों पर अथवा सरोवरों के तट पर दिखायी देता है और उनके पास के वृक्षों पर नीड़ बनाकर रहता है।"

चकोर के नेत्र सुन्दर समझे जाते हैं, तभी तो संस्कृत के कवियों ने दमयन्ती, इन्दुमती आदि अप्रतिम सुन्दरियों के नेत्रों की उपमा चकोरी के नेत्रों से दी है।

चकोर दिन में 'क्रें-क्रें' की आवाज़ करने वाला, डरपोक स्वभाव का और शान्त-चित्त होता है।

गौरैया

गौरैया ऐसा पक्षी है, जो सदा से सब जगह पाया जाता है। देश-काल के अनुसार इसकी अनेक किस्में पायी जाती हैं। यह घरेलू पक्षी है। भारत में इसकी दो ख़ास किस्में पायी जाती हैं—पहाड़ी और मैदानी इलाक़े की गौरैया। फ़र्क केवल इतना ही है कि पहाड़ी इलाक़ों की गौरैया मैदानी इलाक़ों की गौरैया से आकार में कुछ बड़ी और अधिक सलोनी होती है।

नर गौरैया को 'चिड़ा' भी कहते हैं। इसके सिर और गरदन का भाग भूरा और गले का निचला भाग और सीना काले रंग का होता है। चोंच के दोनों ओर के भाग यानी गाल बिल्कुल सफ़ेद होते हैं। इसके शरीर का शेष सारा निचला हिस्सा कुछ-कुछ पीला होता है।

गौरैया एक बार में तीन से पांच अंडे तक देती है। उनका रंग सफ़ेद, हल्का हरा और पीलापन लिए होता है। उन पर बादामी रंग की चित्तियां-सी होती हैं। नर और मादा—दोनों मिलकर बच्चों का पालन-पोषण करते हैं। किन्तु अंडे सेने की पूरी ज़िम्मेदारी मादा पर होती है। चौदह दिनों में अंडों से बच्चे निकल आते हैं। गौरैया के छोटे-छोटे बच्चे सयाने होने पर गोबरेलों और तितलियों के लारवों को

खाकर उनकी संख्या में काफ़ी कमी व
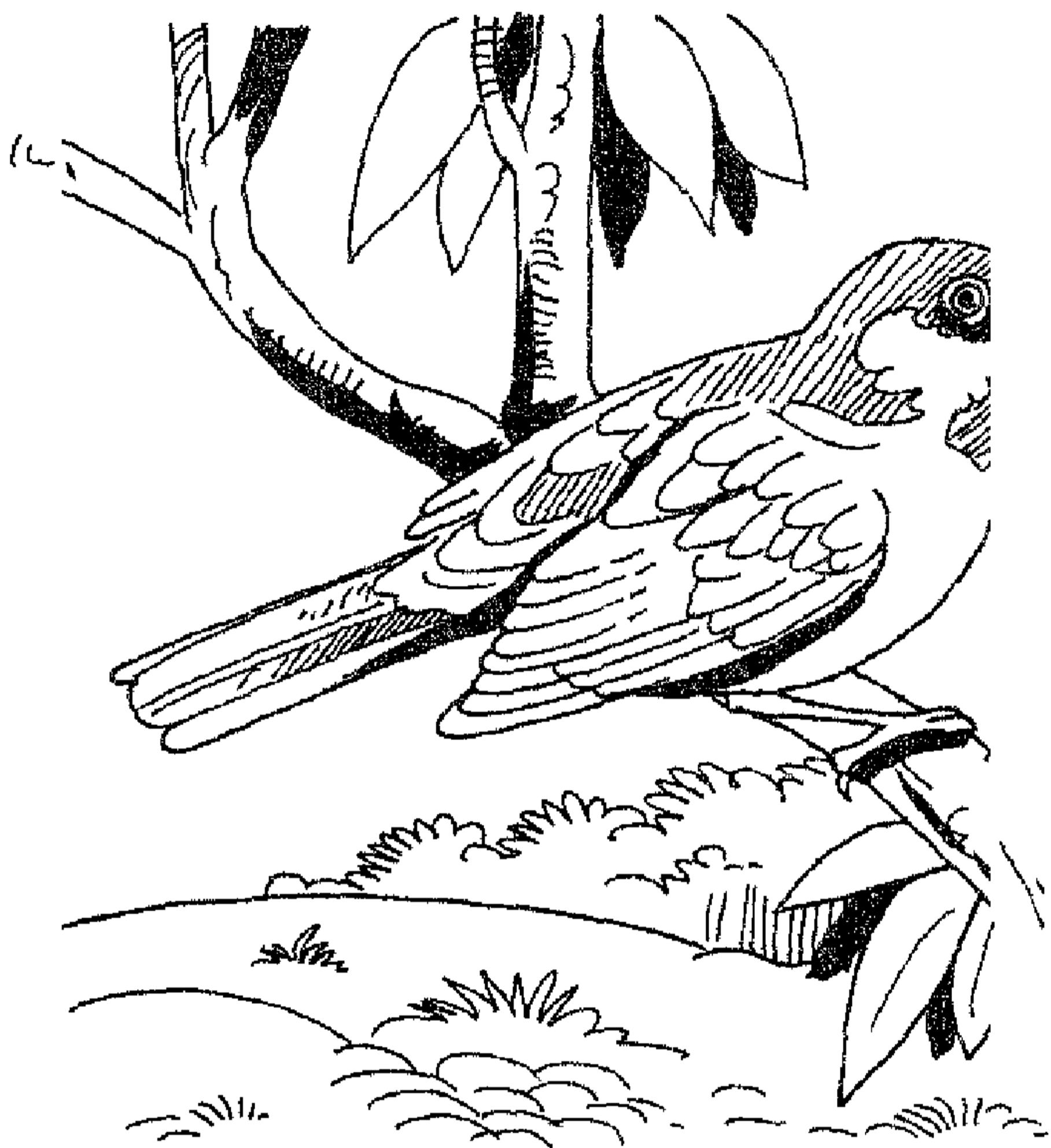
गौरैया के घोंसले मज़बूत नहीं होते।
तिनकों, ऊन के टुकड़ों, भूसा और पंख
करके गौरैया अपना घोंसला तैयार कर
छप्पर, दीवार—जहां कहीं भी थोड़ी जगह
गौरैया ने घोंसले के लिए तिनके ला-
करना शुरू कर दिये। मकानों की कार्निस
में सूराख उनके बसने की जगह होते है

गौरैया को तुम सब जगह देख
दाने-चारे की सुविधा के लिए अधिकतर व

की वस्ती के आस पास रहती है मनुष्य ने जब और जहां भी नयी वस्ती बसायी गौरैया भी उनके साथ रही है। ऐसी एक-आध जगहों को छोड़कर छोटी या बड़ी चाहे कैसी भी वस्ती हो, गौरैया सब जगह फुदकती नज़र आयेगी। वह घरों में भी बराबर आती-जाती है। परन्तु वहां वह अधिकतर बसेरे की गरज से जाती है, भोजन की खोज के लिए नहीं।

शहरों में खाने-पीने और अनाज की दुकानों पर गौरैया को डटा हुआ पाया जा सकता है। कभी वह नज़र बचाकर भागने की फिक्र में होती है तो कभी बढ़कर हाथ साफ़ करने की घात में। मतलब यह कि वह मौके को हाथ से नहीं जाने देती।

वस्ती के बाहर इनके झुंड-के-झुंड पकती हुई फ़सलों और फल के बगीचों में पहुंचकर बहुत नुक़सान करते हैं। खेत में ताजे बोये हुए अनगिनत बीजों को कुरेद-कुरेदकर गौरैया जो हानि करती है, वह असहनीय होती है। इस प्रकार गौरैया आदमी की संगति में रहकर अपने अधिकार से कहीं अधिक मनुष्य के भोजन पर धावा करती है। किन्तु इसके साथ-ही-साथ खेती और मनुष्य की तन्दुरुस्ती को हानि पहुंचाने वाले कीड़े-मकोड़ों को खाकर वह किसी हद तक मनुष्य के लिए लाभदायक भी है।

चतुर गौरैया

एक गौरैया थी। वह अपने साथियों से बिछुड़कर इधर-उधर दूर-दूर तक खड़े पेड़ों की डालों पर चहकती हुई उड़ने लगी। एक डाल से दूसरी डाल पर भटकते-भटकते और पेड़ों के ऊपर से इधर-उधर अपने साथियों को खोजने में उड़ते-उड़ते वह थक गयी। थकने के कारण वह हांफने लगी। उसे प्यास भी अब ज़ोर से लगने लगी थी। अब उसे अपने साथियों को खोजने से पहले पानी की तलाश थी। उसकी नज़र अब दूर-दूर तक पानी की तलाश में उड़ते-उड़ते भटकने लगी। बहुत देर तक खोजने के बाद अन्त में उसे बहुत दूर जाकर एक कीचड़ और पानी से भरा गड्ढा दिखायी दिया। गड्ढे में जब पानी पीने गयी तो कीचड़ में फंस गयी। यद्यपि उसने पानी पीकर अब अपनी प्यास बुझा ली थी, किन्तु बहुत कोशिश करने पर भी वह कीचड़ में ऐसी फंसी कि उसका उसमें से बाहर निकलना कठिन हो गया। अपनी इस मुसीबत के कारण बेचारी बड़ी परेशान थी। वह सोचने लगी—घोंसले में बच्चे इन्तज़ार कर रहे होंगे। अब क्या करे ? कैसे निकले ?

इतने में गड्ढे के पास के रास्ते से एक ग्वाला उसे देखते हुए निकलने लगा। गौरैया ने उससे अनुरोध किया और कहने लगी—"ग्वाले भाई, यदि

तुम मुझे इस कीचड में स बाहर निकाल दो तो बडी कृपा होगी."

ग्वाले ने जवाब दिया—"यदि मैं तुम्हें कीचड़ में से निकालने की कोशिश करूं तो इतने में मौक़ा देखकर मेरी गाय भाग जायेगी। फिर वह मेरे हाथ नहीं आ सकेगी। मैं नहीं रुक सकता।"

ग्वाले का जवाब सुनकर गौरैया निराश तो हुई, किन्तु उसे आशा भी हुई कि कुछ देर में इसी रास्ते से शायद कोई और मनुष्य भी गुज़र सकता है। इसलिए वह फिर कीचड़ में फंसी हुई किसी और आने वाले मनुष्य का इन्तज़ार करने लगी।

कुछ देर में ही उधर से अपनी बकरियों के झुंड के साथ एक चरवाहा निकला। उसे देखकर गौरैया की हिम्मत बंधी। उसने उससे भी अपने को कीचड़ में से निकालने की ग्वाले से की गयी प्रार्थना को दोहराया। चरवाहे को गौरैया पर दया तो आयी, पर उसने भी उसे निकालने में अपनी असमर्थता प्रकट की। वह बोला—"तुझे निकालते समय मेरी बकरियां मेरे क़ाबू में नहीं रह पायेंगी और जंगल में इधर-उधर भागकर तितर-बितर हो जायेंगी। फिर मेरा उन्हें पकड़ पाना असम्भव हो जायेगा।"

अब तो गौरैया को बड़ी निराशा हुई, पर इतने में ही उधर से एक बिल्ली निकली। गौरैया ने उससे कहा—"बिल्ली बहन, बिल्ली बहन ! मुझे इस कीचड़

मे से निकाल दो ।"

बिल्ली न उसे मुसीबत मे दखा ता मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुई, पर उसने साथ ही उसे स्पष्ट उत्तर भी दिया। वह बोली—"मैं तुझे निकाल तो दूंगी, लेकिन निकालने के वाद खा जाऊंगी।"

गौरेया ने कहा—"पहले मुझे निकाल दो, फिर पानी से धोकर धूप में बैठा देना और जव सूख जाऊं तो खा लेना। मैं कहां मना करती हूं।"

बिल्ली ने उसे कीचड़ से निकाला तो गौरैया ने उसे धन्यवाद दिया। इससे बिल्ली को भी सन्तोष हुआ। उसने गौरैया को वड़े विश्वास के साथ साफ़ पानी में खूब धोया। फिर उसे सुखाने के लिए धूप में बैठा दिया।

मैदान में हवा लगने और धूप की गर्मी से गौरैया और उसके तेज़ कोमल पंखों को सूखने में अधिक देर नहीं लगी।

गौरैया के पंख जैसे ही सूखे, वह तुरन्त उड़कर एक डाल पर जाकर बैठ गयी। बिल्ली देखती ही रह गयी, परन्तु अब हो ही क्या सकता था। वह उसे ललचायी आंखों से देखने लगी।

इस पर गौरैया ने फुदकते हुए कहा—"टुकुर-टुकुर क्या देखती हो, जान सभी को प्यारी होती है। मै तुम्हारा अहसान तो मानती हूं, पर इसके बदले में अपनी जान तो नहीं दे सकती। ऐसा तो कोई मूर्ख

ही कर सकता हे ' यह कहकर गोरेया ने बिल्ली की तरफ़ कृतज्ञता से देखते हुए उसके प्रति आभार प्रकट किया और फिर फुर्र से खुले आकाश में अपने घर की दिशा की तरफ़ उड़ गयी।

नीलकंठ

इस पक्षी का कंठ सुन्दर भी है और रंगीन भी। इसीलिए इसका नाम नीलकंठ है। नीलकंठ को अंग्रेज़ी में 'ब्लू जे' अथवा 'रांलर' कहते हैं। यह पक्षी भारत, श्रीलंका और बर्मा (ब्रह्मप्रदेश) में ख़ास तौर से पाया जाता है। इसकी अनेक किस्म होती हैं। एक प्रकार का नीलकंठ पक्षी कश्मीर में पाया जाता है, जो कि बहुत ही सुन्दर होता है। दूसरी किस्म का यह पक्षी मैदानी भागों में पाया जाता है। नीलकंठ पक्षी हिमालय में चार हज़ार फुट की ऊंचाई के बाद नहीं पाया जाता।

नीलकंठ की लम्बाई लगभग 25 से. मी. होती है। इसके पंख 18 से. मी. लम्बे होते हैं। नर और मादा—दोनों पक्षी समान होते हैं। सिर का ऊपरी हिस्सा नीला-हरा होता है। पूंछ के छोर का ऊपरी हिस्सा भी नीला होता है। पंख उसमें नीले, हरे रंग के होते हैं। पूंछ गहरे नीले रंग की होती है। जब

नीलकंठ का खासकर भोजन छोटे बड़े कीड़ों का होता है। फल या अनाज आदि कम ही खाता है।

नीलकंठ छोटे-बड़े कीड़े-मकोड़ों की तलाश में चुपचाप बैठा रहता है और देखते ही उन पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट कर देता है। फिर उन्हें अपना भोज्य-पदार्थ बना लेता है। इस प्रकार यह पक्षी हानिकारक कीड़े-मकोड़ों का नाश करके मनुष्य जाति की अप्रत्यक्ष सहायता करता है।

नीलकंठ वृक्ष की डालियों के खोखल में या मकान के छेदों में अपना घोंसला बनाता है और इन्हीं घोंसलों में अपने अंडों को रखता है। मादा फरवरी से जुलाई के मध्य में अंडे रखती है। वह एक बार में चार से पांच अंडे तक रखती है। ये बिलकुल सफ़ेद और आकार में 2.6 से. मी. के होते हैं।

मोर की भांति नीलकंठ की लोकप्रियता भी सौन्दर्य एवं धार्मिक महत्व के कारण बहुत अधिक है।

फरवरी मास में नर पक्षी, मादा पक्षी को खुश करने के लिए आकाश में ऊंची उड़ानें भरता है और जहां मादा पक्षी बैठा होता है, हवा में डुबकी लगाता हुआ सीधा आता है। इस प्रकार मादा पक्षी को रिझाने के लिए नर पक्षी अनेक उड़ानें हवा में भरता है और डुबकियां लगाता है। इस स्वभाव के कारण ही अंग्रेज़ी में इसे 'रांलर' कहते हैं।

नीलकठ से सम्बन्धित एक धार्मिक कथा को बडा महत्व प्राप्त है, जो इस प्रकार है—

नीलकंठ नाम कैसे पड़ा ?

जब देव और दानवों ने मिलकर समुद्र का मन्थन किया तो उस मन्थन के परिणामस्वरूप सागर-तल में से अनेकानेक बहुमूल्य एवं महत्वपूर्ण पदार्थ निकले। इन पदार्थों में अमृत तो था ही, किन्तु भयंकर महा-विनाशकारी विष भी था।

इस भयभीत करने वाले विष को ग्रहण करने के लिए न तो कोई देवता राजी होता था और न कोई दैत्य ही। इस जटिल समस्या ने सारे विश्व के लिए महा-विनाशकारी संकट उत्पन्न कर दिया। अन्त में इस हलाहल विष को ग्रहण करने का निश्चय शिवजी ने किया। उन्होंने संसार के कल्याण के लिए इसे अपने गले में धारण कर लिया। जिसके कारण भगवान शंकर का कंठ नीलवर्ण हो गया। फलस्वरूप समस्त विश्व के लिए उत्पन्न हुए संकट से सभी को मुक्ति मिल गयी और देव-दानवों—सभी में इससे आनन्द छा गया।

चूंकि नीलकंठ का गला भी नीला होता है। अतएव उसको नीलकंठ का नाम प्राप्त हुआ। वह सभी पक्षियों में अत्यन्त पवित्र, देवतुल्य एवं महत्वपूर्ण

समझा गया अपने धार्मिक महत्व के कारण उसके दर्शन को इसलिए पवित्र एवं पुण्यमय समझा गया कि उसको भगवान शंकर का अवतार मान्य किया जाने लगा। इसीलिए अब भी देश के अनेक क्षेत्रों में दशहरे के दिन लोग नीलकंठ पक्षी के दर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं। इसका माहात्म्य युग-युगों से अब तक जारी है।

मैना

पशुओं के समान पक्षियों का भी मानव-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पशुओं की भांति इन्हें भी पालतू बनाया गया है। पालतू पक्षियों में तोता, कबूतर, बया और मैना आदि प्रमुख हैं। मैना की बोली बड़ी मधुर होती है। वह फुदककर, चहककर अथवा मधुर बोली से बाल-वृद्ध—सभी का मन मोह लेती है।

मैना काले या मटियाले रंग की होती है। इसके सिर, पैर और चोंच पीले रंग के होते हैं। आंखों के चारों ओर भी पीला गोल घेरा होता है। तोते की तरह यह भी मनुष्य की बोली की नकल कर सकती है। इसीलिए शौकीन लोग इसे तोते की तरह पालते और पिंजड़े में रखते हैं।

मैना अपना घोंसला अथवा घर किसी सूराख में

बनाती है वह सूराख किसी पेड की डाल मे या किसी पुराने मकान की दीवाल मे होता है। वह अपना घोंसला परों, तिनकों, काग़ज़ के टुकड़ों और रुई आदि से बनाती है।

मादा पक्षी एक बार में चार या पांच हल्के नीले रंग के अंडे देती है। उन अंडों को नर और मादा—मैना पक्षी सेते हैं और जब तक वे आत्म-निर्भर नहीं हो जाते, तब तक उनका ध्यानपूर्वक पालन-पोषण करते हैं।
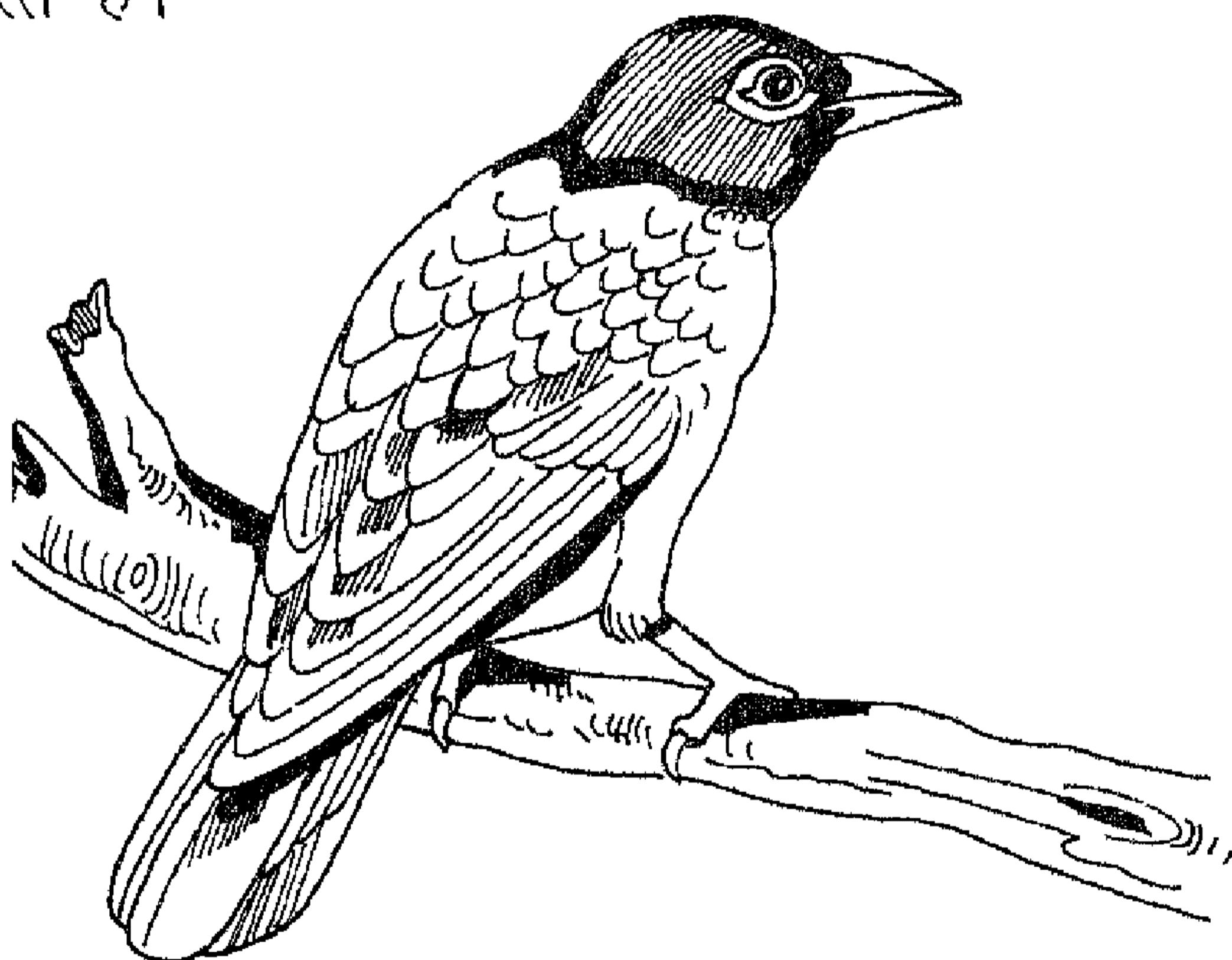
मैना में यह विशेषता है कि यदि कोई एक शब्द बार-बार दोहराकर उसे बोलना सिखाये तो वह उसे ध्यानपूर्वक सुनकर सीख जायेगी और कुछ दिनों में ही उसका उच्चारण करने लगेगी। वैसे उसकी

स्वाभाविक ध्वनि तो मधुर होती ही है और इसीलिए मनुष्य को मुग्ध कर पालतू तथा जान-पहचान वाली बन गयी है।

मैना के आहार में फल-फूल, अनाज के दाने, कीड़े-मकोड़े और अन्य खाने-पीने की वस्तुएं शामिल हैं। वह नाजुक स्वभाव की होती है।

बेचारी मैना

एक बार एक मैना पेड़ पर बैठी कुछ खा रही थी। खाते-खाते अचानक थोड़ी जूठन नीचे गिर पड़ी।

दुर्भाग्य से वह जूठन उधर से जा रहे एक सर्प पर गिरी। वह क्रोधित हो उठा।

उसने आंखें लाल करते हुए मैना से कहा—"क्यों री दुष्टा ! तुझे दिखायी नहीं दिया कि मैं जा रहा हूं !"

मैना गिड़गिड़ाते हुए बोली—"नागराज, मैंने जान-बूझकर जूठन नहीं फेंकी। अचानक गिर गयी। मुझे क्या पता था कि उसी समय आप भी नीचे से निकलेंगे।"

इस पर सांप और भी बिगड़ गया—"ऐ मैना ! बहाने बनाने की ज़रूरत नहीं। तूने जान-बूझकर मेरे क्रोध को भड़काया है। मैं तुझे इसकी सज़ा अवश्य

दूगा ’

“मुझे क्षमा कर दो नागराज !” मैना गिड़गिड़ायी।

“नहीं, मेरी फुफकार की ज्वाला में तुझे जलकर मरना होगा। ये ले।” यह कहकर सांप ने उस वृक्ष पर बैठी मैना पर फुफकार मारी।

मैना घबराकर उड़ गयी और दूसरे वृक्ष पर जा बैठी। पहले वाला वृक्ष सांप की फुफकार से जल उठा।

मैना को सुरक्षित दूसरे पेड़ पर देख सांप का क्रोध और भी बढ़ गया। वह दूसरे पेड़ की ओर फुफकारा।

दूसरे पेड़ के जलते ही मैना तेज़ी से दूर उड़ गयी। उसने डर के मारे उस जंगल को छोड़कर जाना ही उचित समझा।

और उधर सांप मैना को दूर तक उड़ते देखता ही रह गया।

अचानक एक जलती शाखा टूटकर उस पर गिरी। सांप उसके नीचे दबकर जलने लगा। उसने बहुत कोशिश की, परन्तु भारी जलती हुई शाखा को वह अपनी पीठ से न हटा सका। वह अपने ही क्रोध की अग्नि में जलकर भस्म हो गया।

देखा ! क्रोध करना कितना बुरा होता है।

मोर

मोर हमारे देश का राष्ट्रीय पक्षी है। यह दूस
पक्षियों से अधिक बड़ा है। इसी कारण यह अधिक
दूर तक नहीं उड़ सकता। इसकी लम्बाई लगभग चा
फुट होती है। पक्षियों में सुन्दरता के विचार से ज
स्थान मोर का है, वह किसी दूसरे पक्षी का नहीं है
इसका रंग नीला तथा हरा होता है।
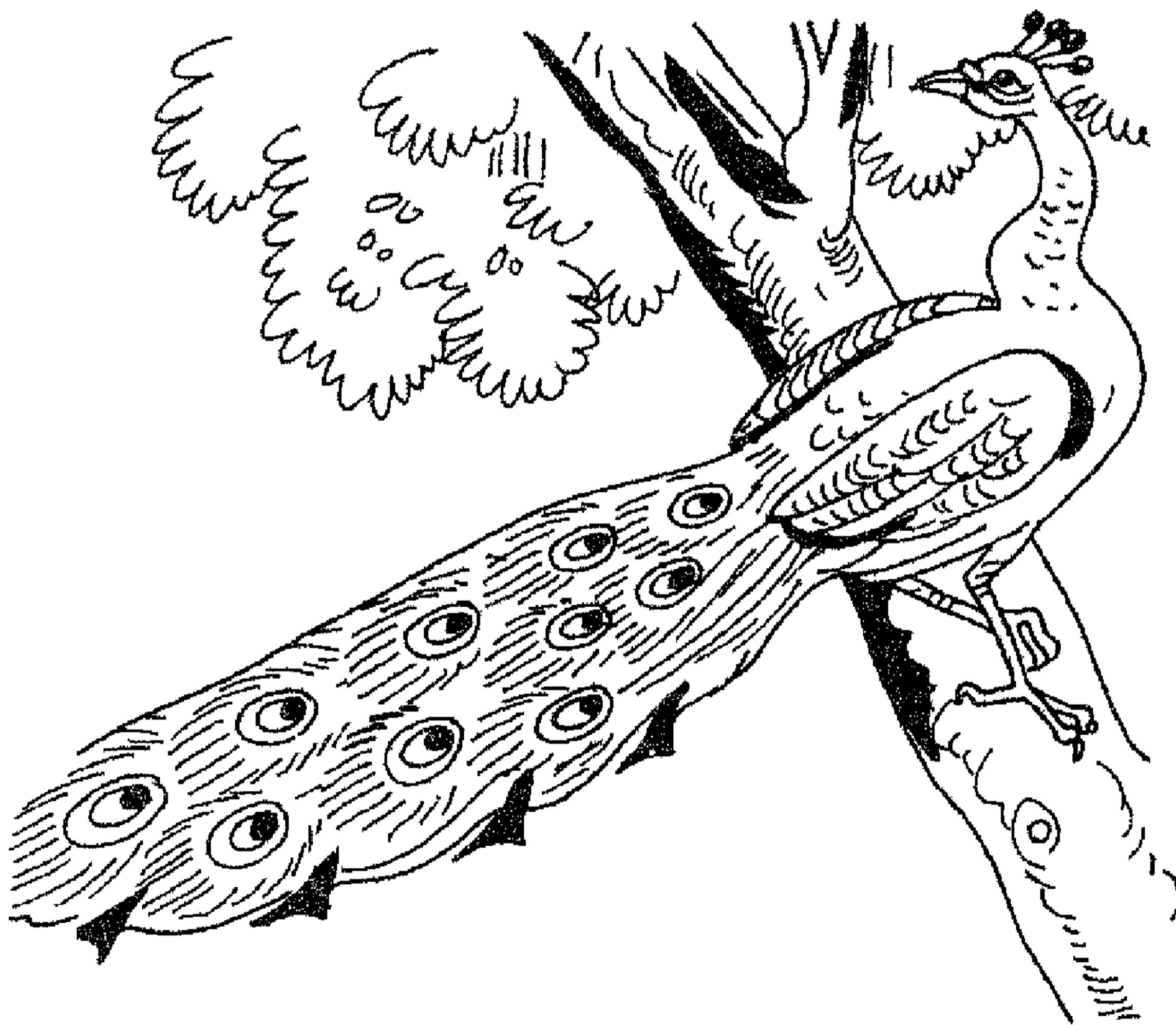
मोर की सुराहीदार गर्दन, सिर का शाही ताज,
भड़कीली पोशाक यानी रंग-बिरंगा शरीर और दुम

देखते ही बनती है। ख़ासकर इसकी बांकी चाल बड़ी आकर्षक होती है, परन्तु मोर के पैर भद्दे और खुरदरे होते हैं। उसके पंख भी बस दिखावटी ही होते हैं। उनसे उसे उड़ने में सहायता नहीं मिलती। शरीर भारी होता है। इसलिए अधिक-से-अधिक वह ज़मीन से उड़कर पेड़ पर जा बैठता है, परन्तु भागता बहुत तेज़ है।

वर्षाकाल में बादल का गरजना सुन वह अपने पंख फैलाकर इन्द्रधनुषी सतरंगी छटा बिखेरकर नाचने लगता है। उस समय इसका नाच देखने योग्य होता है। सुन्दर होने के अलावा इसकी बोली सुरीली और तेज़ होती है।

हमारे देश की प्राचीन भाषा संस्कृत में मोर को 'मयूर' कहा गया है। उसी से 'मोर' शब्द बना है। कहा जाता है कि यह 'मेओ-मेओ' या 'मेह आओ-मेह आओ' की आवाज़ करता है, जो वर्षा के आने की सूचक है।

मोरनी मोर जैसी सुन्दर नहीं होती। मोर नाचते समय चारों तरफ़ चक्कर लगाता है। उसकी दुम के पंखों में नीले-नीले चन्द्रमा जैसे गोल निशान होते हैं। नाचते समय मोर बिलकुल मस्त हो जाता है और अपने आस-पास के वातावरण को बिलकुल भूल जाता है।

कुछ मोर बिलकुल सफेद रंग के भी होते हैं। नाचते समय ये भी बहुत सुन्दर लगते हैं। सफेद मोर पश्चिमी भारत में कहीं-कहीं मिलता है।

मोर शाकाहारी नहीं है। यह कीड़े-मकोड़े खाता है। घास में पाये जाने वाले कीड़े इसे बहुत अच्छे लगते हैं। छोटे-मोटे सांप भी इसके आहार में शामिल हैं। सांप को देखते ही मोर उसे चोंच में पकड़ लेता है और ज़मीन में पटक-पटककर मार डालता है। कभी-कभी यह सांप को साबुत भी निगल जाता है।

मोर के पंख बड़े सुन्दर होते हैं। इन्हें गाय-बैलों की गरदनों और माथे पर शृंगार के लिए बांधते हैं। इसके अलावा इनसे सुन्दर पंखे भी बनाये जाते हैं, जो गर्मी के दिनों में काम आते हैं।

मोर सीधा-सादा और शान्तिप्रिय पक्षी है। यह मनुष्य से नहीं डरता और पालने से हिल भी जाता है।

मोरनी वर्ष में एक ही बार अंडे देती है, जो गिनती में दस-बारह और कभी-कभी इससे भी अधिक होते हैं, परन्तु 25 से अधिक नहीं होते। बच्चे जब तक छोटे होते हैं, तब तक नर और मादा की पहचान करना कठिन होता है, किन्तु एक वर्ष बाद नर की दुम बढ़ने लगती है और फिर थोड़े समय के बाद ही यह रंग-बिरंगा एक खूबसूरत दर्शनीय मोर बन जाता है।

तोता

तुमने अनेक घरों में लटके हुए सुन्दर पिंजरे में हरे रंग का और लाल चोंच वाला पक्षी देखा होगा। पालतू पक्षियों में इसका ख़ास स्थान है। इसे 'तोता' कहते हैं। इनकी कई रंग-बिरंगी नस्लें होती हैं, परन्तु अधिक संख्या में हरे रंग के ही तोते होते हैं।
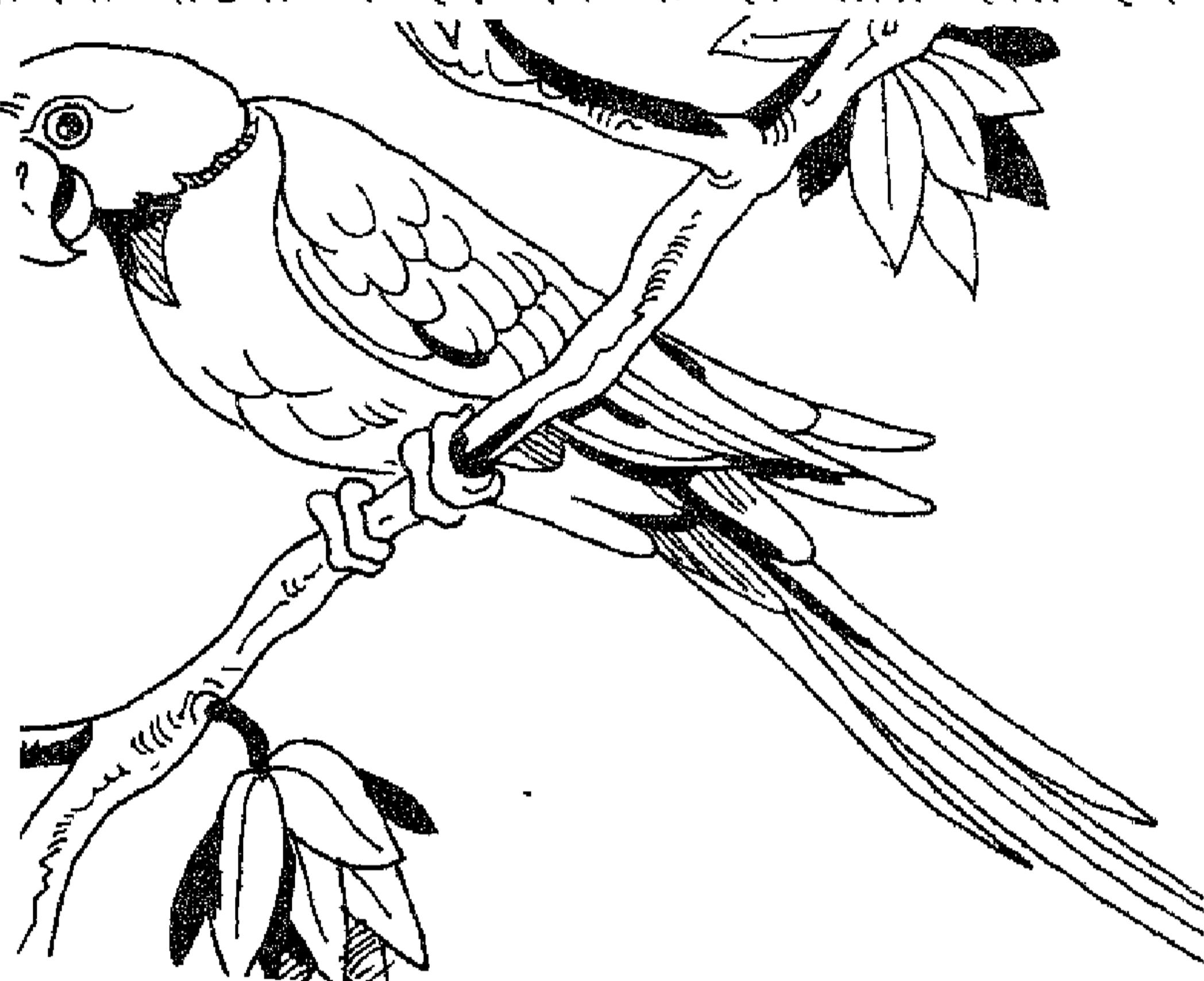
तोता भी एक ऐसा पक्षी है, जो मनुष्य की बोली की नकल कर सकता है। यह पूर्ण रूप से शाकाहारी होता है, जो खाने की वस्तुओं को कुतर-कुतरकर खाता है। साग-सब्ज़ी और फल ही इसका आहार है।

तोता कोई हरे रंग का, कोई लाल और कोई सफ़ेद भी होता है। देखने में सब बहुत सुन्दर लगते

है इसीलिए य आम तौर से घरा मे पाले जाते हे

तोते की चाच आगे स मुड़ी हुई, तेज़ ओर नुकीली होती है। उसकी टांगें भूरी और पूंछ लम्बी होती है। चोंच का ऊपरी भाग नीचे वाले भाग से बड़ा होता है। आंखें गोल, चंचल और छोटी होती हैं और कद कबूतर के बराबर होता है।

तोता हरे-भरे और फल-पत्तों वाले स्थान अधिक पसन्द करता है। वह झुंड बनाकर रहता है। उसका झुंड पेड़ों के बीच हरी-भरी पत्तियों में इस तरह छिपकर बैठ जाता है कि उसे पहचानना कठिन हो जाता है।

तोते को प्यार से कोई-कोई 'मिट्ठू' भी कहते हैं, जो इसके मिष्ठभाषी (मीठी बोली बोलने वाला) होने की सूचना देता है। इसके लिए हमारे संस्कृत ग्रन्थों में 'शुक' शब्द का प्रयोग हुआ है। हमारे देश की सैकड़ों प्राचीन लोक-कथाओं और बाल-कहानियों में 'तोते' का उल्लेख आता है।

यह पक्षी रट बहुत जल्दी लेता है। मनुष्य और पशुओं की बोली की नकल तो यह बहुत ही अच्छी तरह कर लेता है। इसकी ज़बान नर्म और चौड़ी होती है। तोते को नहाना बहुत पसन्द है। झीलों और तालाबों की तलाश में तोता दूर-दूर तक निकल जाता है और उनमें घंटों तक नहाया करता है।

यद्यपि तोता पालतू पक्षी बन जात' है, किन्त
उसे पिजरे से निकलने का ज़रा-सा भी मौक़ा
और उसके पंखों में उड़ने की ताकत हो तो वह
उसी समय अपना कैदी जीवन छोड़कर हवा में
आज़ाद हो जाता है।

पक्षीराज गरुड़

यह एक बहुत बड़ा और बलवान पक्षी है।
कारण इसे पक्षियों का राजा कहा गया है।

पक्षीराज गरुड़ की आयु अन्य पक्षियों से
होती है। यह बहुत दूर तक, अत्यन्त ऊंचाई तक
तेज़ गति से उड़ सकता है।

गरुड़ का वास किसी वृक्ष पर नहीं होता उसका निवास स्थान किसी ऊंचे पहाड़ पर एकान्त स्थान में चट्टानी बड़े छेद में होता है, जिसे वह अपने लिए सुरक्षित समझता है। गिद्ध की भांति वह भी मांस-भक्षी है, किन्तु बाज की तरह भयानक शिकारी पक्षी है। वह एकान्त में विचरते हुए जानवर पर ही झपट्टा मारकर हमला करता है। इसी कारण उसके शिकार और उस पर हुए हमले को बहुत कम देखा जाता है। उच्च पहाड़ी स्थानों में गह्वरों में रहने के कारण ही यह अज्ञात-सा है।

गरुड़ के पंख भूरे होते हैं और चोंच पर चौड़ा उभार होता है। इसका प्रिय भोजन सांप है। भले ही वह अजगर हो। इसकी दृष्टि बहुत तीक्ष्ण होती है और यह बहुत दूर-दूर तक सतर्कतापूर्वक देख सकता है।

संस्कृत के धार्मिक प्राचीन ग्रन्थों में पक्षीराज गरुड़ का भगवान विष्णु के वाहन के रूप में उल्लेख हुआ है। इस कारण गरुड़ को महत्वपूर्ण पवित्र पक्षी माना जाता है। इसका अनेक प्राचीन कथाओं में उल्लेख पाया जाता है। इस पक्षी द्वारा गुरु (भारी) भार लेकर लड़ने के कारण ही शायद इसका 'गरुड़' नाम पड़ने का अनुमान लगाया जाता है।

कबूतर

हमारे देश के जाने-माने पक्षियों में कबूतर
भोला और सीधा-सादा पक्षी है। इसे शान्ति का
माना जाता है। ख़ासकर सफ़ेद कबूतर अधिक
किये जाते हैं और उन्हें पालतू भी बनाया जा
भारत में कबूतरों की अनेक प्रकार की नस्लें
जाती हैं।
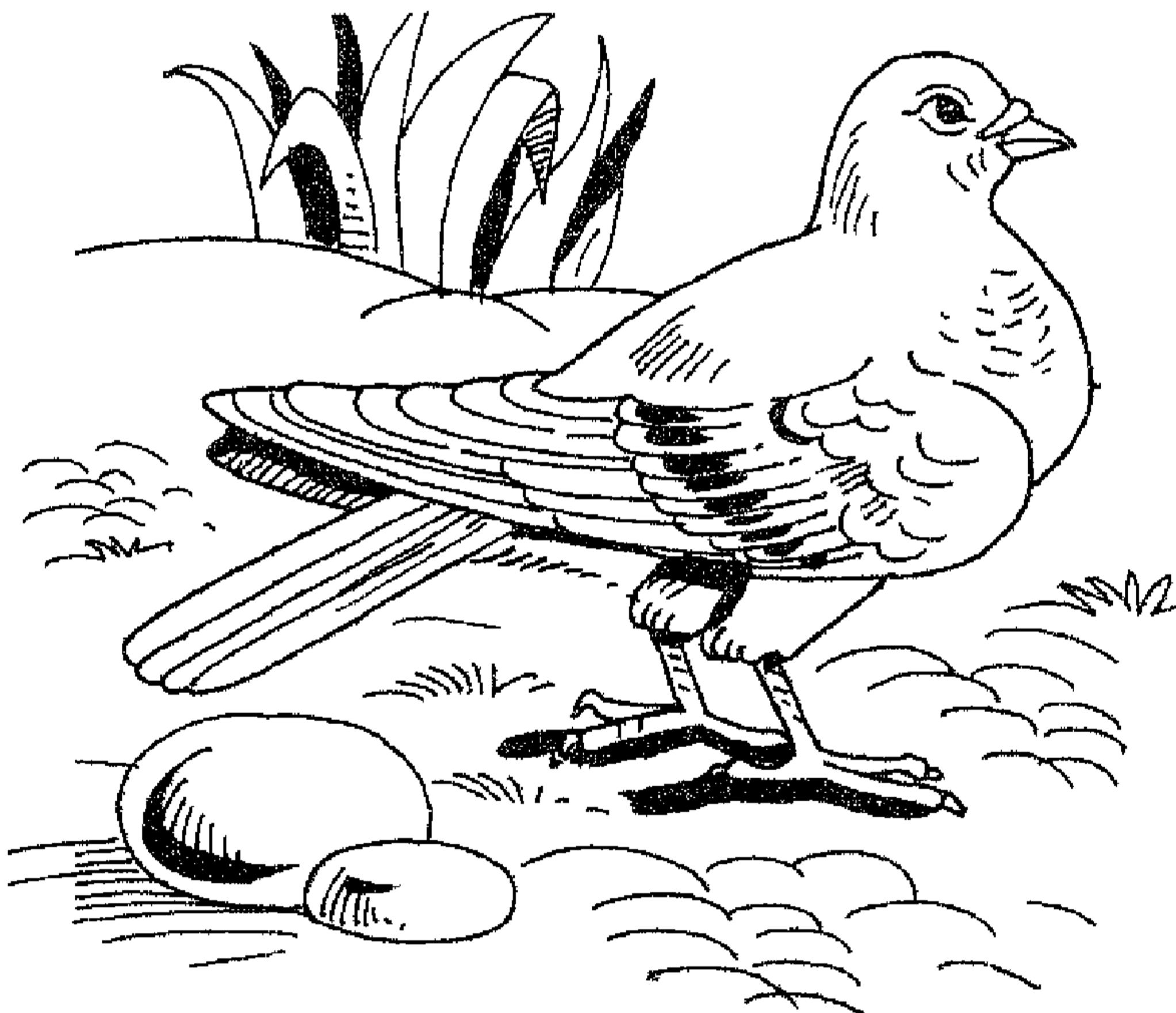
कबूतर शान्तिप्रिय तो है ही साथ ही यह
भी प्रकार की हिंसा नहीं करता। संस्कृत में इसे
कहते हैं अर्थात् हवा में जो पोत अथवा जह
समान उड़ता है। 'पारावत' इसे इसलिए कह

हे कि यह लम्बी उडाने भरने म कुशल होता हे

ईसवी सन से तीन हज़ार वर्ष पहले मिश्र देश में कबूतर पाले जाते थे। हमारे देश के महाकवि कालिदास ने लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व बरफ़-जैसे सफ़ेद रंग के कबूतरों का वर्णन किया है। प्राचीनकाल में दूर-दूर तक सन्देश भेजने के लिए इनका उपयोग किया जाता था। कबूतरों द्वारा डाक भेजने की सेवा चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र अशोक के समय में भी प्रचलित थी। आजकल भी कहीं-कहीं ज़रूरत पड़ने पर वायरलेस सेवा के साथ-साथ इनके द्वारा भी सन्देश भेजे जाते हैं।

देश के अनेक नगरों में कबूतरबाज़ी का शौक खूब लोकप्रिय है। दिल्ली और आगरा में सैकड़ों वर्षो से कबूतरबाज़ी का शौक रहा है। आज भी इन नगरों के प्रायः हर पुराने मोहल्ले में कबूतरबाज़ी का एक क्लब है। इन शौकीनों का सबसे बड़ा अड्डा दिल्ली की जामा मस्जिद है। इसकी विशाल सीढ़ियों पर हर शाम कबूतरबाज़ों की भीड़ इकट्ठी होती है।

अपने देश में कबूतर की दो मुख्य किस्में हैं—पालतू और जंगली। यह सभी जगह घरों तथा जंगलों में पाया जाता है। बड़े या छोटे शहर हों या गांव, सभी को यह एक समान पसन्द करता है। दयालु लोगों द्वारा हज़ारों कबूतरों को प्रतिदिन कई

बोरे अनाज खिलाया जाता है।

जंगली कबूतर पहाड़ों की चट्टानों में आश्रय लेता है। यह खूब गरम और खूब ठंडे स्थानों में भी पाया जाता है। हिमालय में तेरह हज़ार फुट की ऊंचाई पर भी यह मज़े में रहता है।

कबूतर का रंग सलेटी, नीला-सा होता है। गरदन पर चमकीले हरे रंग की कंठी और उसके नीचे बैंगनी रंग की पट्टी का घेरा होता है। दोनों बाजुओं पर दो काली पट्टियां होती हैं। पूंछ के पिछले छोर पर अपेक्षाकृत अधिक चौड़ी काली पट्टी रहती है। बाहर के पंखों की जड़ें सफ़ेद होती हैं। आंखों की पुतलियां गोल, बड़ी और भूरे लाल रंग की होती हैं। काले रंग की नरम चोंच का पिछला भाग सफ़ेद और अधिक मोटा होता है। सिर छोटा, शरीर भारी और डैने मज़बूत होते हैं। लाल-गुलाबी रंग की टांगों में चार अंगुलियां होती हैं जिनमें से तीन आगे और एक पीछे रहती है। नर और मादा कबूतर के रूप-रंग में अन्तर नहीं होता। फ़र्क इतना है कि कबूतरी ज़रा छोटी होती है। कबूतर काफ़ी तेज़ और सीधी उड़ान भरते हैं और अधिकतर झुंडों में रहते हैं।

कबूतर पहले अपने घोंसले बनाने के लिए जगह का चुनाव करते हैं फिर वे पतली-पतली टहनियों, कूड़ा-करकट, घास के तिनकों, कपड़े के छोटे-छोटे

टुकडो और पखो आदि को जमा करके घोसला तैयार करते है व घोसला बनाने के लिए ऐसी जगह पसन्द करते हैं, जहां उनका बचाव हो सके।

मादा कबूतर एक बार में दो सफ़ेद अंडे देती है। अंडे देने का उसका कोई ख़ास समय नहीं होता। कबूतरी वर्ष में कभी भी अंडे दे सकती है, परन्तु आम तौर से उसके अंडे देने का मौसम जनवरी से मई महीने तक होता है। अंडे को सेने और बच्चों को चुगाने का काम नर और मादा—दोनों मिल-जुलकर करते हैं।

मुर्गी के अंडे की तरह कबूतर के अंडे भी खाये जाते हैं। कबूतरबाज़ जब अपने कबूतरों से और बच्चे नहीं लेना चाहते तो वे अंडों को खाने के काम में ले लेते हैं। बिल्ली आदि दुश्मनों से बचने के लिए कबूतर रात को ऊंचे भवनों के रोशनदानों में और छज्जों आदि दुर्गम स्थानों पर शरण लेते हैं।

कबूतर के लिए बाज पक्षी ख़ास दुश्मन है। इसके अलावा बेरी (तुरमती) और लग्गड़ (चील जैसा पक्षी) भी कबूतर के शत्रु हैं। आसमान में उड़ान भरते हुए कबूतरों को पकड़कर ये बहुत हानि करते हैं। सांप इसके अंडे और बच्चे खा जाता है। बिल्ली, कुत्ते और नेवले इन्हें अपना भोजन बना लेते हैं। कहते हैं कि जब बिल्ली खाने आती है तो यह आंख मूंदकर बैठ जाता है और सोचता है कि मुझे कोई देख ही नहीं रहा !

आजकल बड़े शहरा मे कबूतरो की सख्या इतनी वढ़ गयी है कि वे परेशानी का कारण वन गये हैं। इनकी बीटें इमारतों को गन्दा करती हैं। बीट में एक तरह का तेज़ाब होता है, जो इमारतों के क़ीमती पत्थरों को गला देता है। खेत और गोदामों में पहुंचकर अनाज का नुक़सान करना उनकी आदत में शामिल है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कबूतर सदा मनुष्य के लिए उपयोगी और मनोरंजक पक्षी रहा है।

चुनिया बत्तख

चुनिया वत्तख को छोटी मुरगाबी भी कहा जाता है। यह बहुत ही लजीली और देखने में सुन्दर होती है। इसे पास से देखने का मौक़ा बहुत कम मिलता है। केवल दूर से, जबकि वह उड़ती है उसके सुन्दर और सांचे में ढले हुए सुगठित बदन की झलक-भर देखी जा सकती है। उसके सीने का रंग कत्थई लाल होता है। सिर चमकीले हरे रंग का और पंखों पर धारियां होती हैं। रंगों की यह सुन्दरता केवल नर में होती है, मादा में नहीं। मादा के परों का रग चितकबरा होता है।

चुनिया बत्तख नदियों, झीलों, नहरों और तालाबों के किनारे देखी जाती है। इसे उड़ते हुए या काफ़ी

बड़े झुंडों में एक साथ तैरते हुए देखा जा सकता है। तैरते हुए वह बार-बार सिर को पानी में डुबाती है। कभी-कभी तो वह ऐसी डुबकी लगाती है कि उसकी छोटी-सी दुम को छोड़कर बाक़ी सारा बदन पानी के भीतर चला जाता है। जब वह उड़ना चाहती है तो सीधे पानी की सतह से हवा में उठ जाती है। उसके उड़ने की गति काफ़ी तेज़ होती है। जब फ़सल पक जाती है तो चुनिया बत्तख खेतों पर हमला करती है। फ़सल के कट जाने पर वह खेत में बिखरे हुए अनाज के दानों को चुन-चुनकर खाती है। इसके अलावा वह कीड़े-मकोड़ों और छोटी-छोटी मछलियों को भी अपनी खुराक बनाती है।
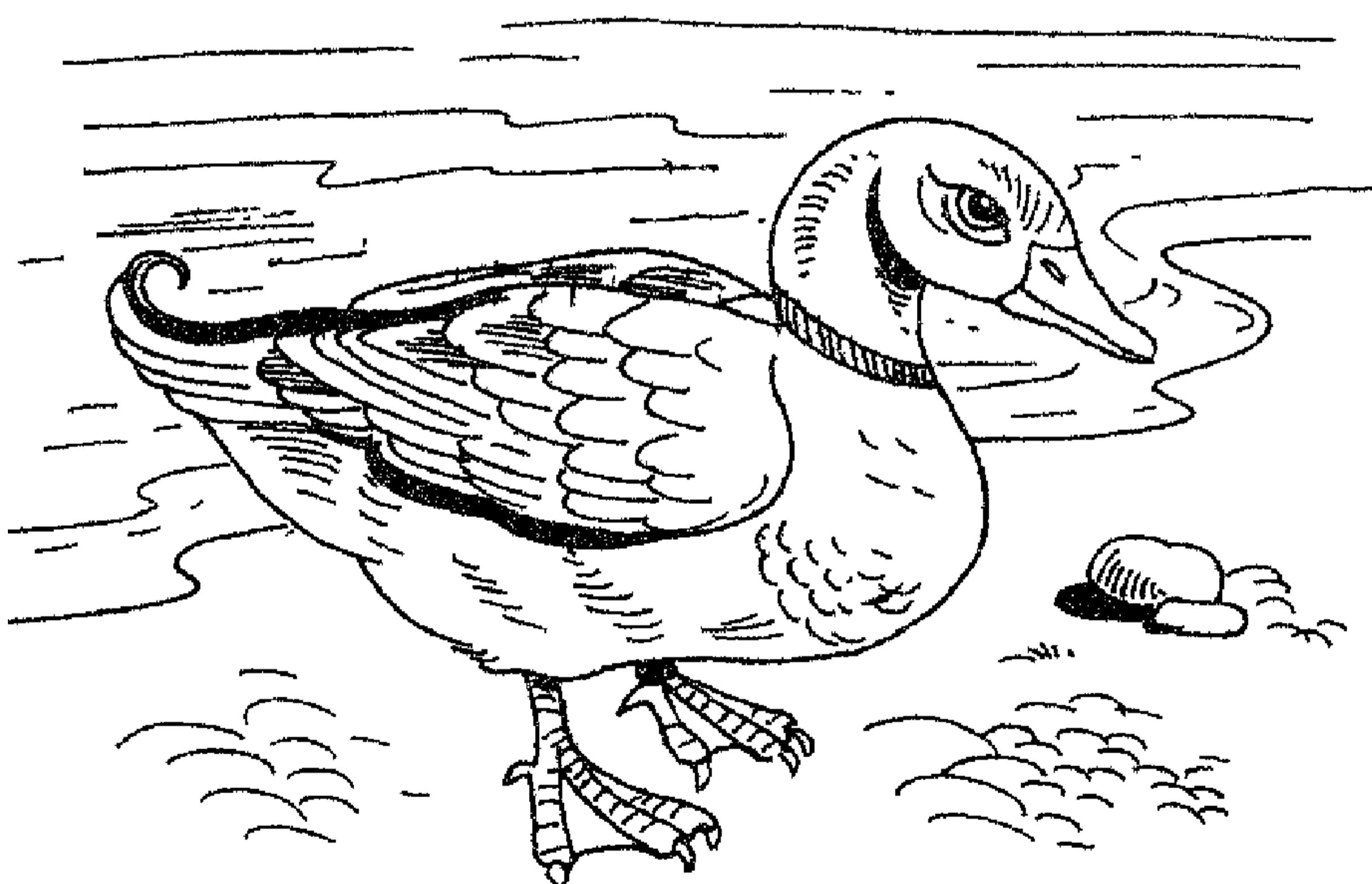
गर्मी के मौसम में चुनिया बत्तख कश्मीर की

झीलों में काफ़ी बड़ी संख्या में पायी जाती हैं। नर धीमी आवाज़ में 'क्रीत-क्रीत' शब्द बोलता है। मादा की आवाज़ कुछ कर्कश-सी होती है।

मादा चुनिया बत्तख पानी के पास दलदल में या झाड़ियों के नीचे अपना घोंसला बनाती है। घोंसला घास-फूस और चीथड़े आदि का होता है और छोटे पेड़ों में अच्छी प्रकार छिपा रहता है। उसे मुलायम बनाने के लिए और उसकी दरारों को बन्द करने के लिए मादा अपने सीने के बालों की तह जमा देती है। वह एक बार में फीके भूरे रंग के आठ से बारह तक अंडे देती है।

बाज

जो अपने उन्नत सिर, आग जैसी धधकती हुई आंखें, मुड़ी हुई ख़तरनाक चोंच, फ़ौलाद की तरह मज़बूत पंजे, बड़े-बड़े पंख और लम्बी उड़ान भरने की अद्‌भुत क्षमता लिए संसार में शक्ति और वीरता का प्रतीक जिस पक्षी को माना जाता है उस पक्षी का नाम है—'बाज'। इसीलिए नेपोलियन के काल के फ्रांस तथा अमरीका और ज़ार के ज़माने के रूस में इसे राष्ट्रीय चिह्न के रूप में स्वीकार किया गया था।

बाज हिमालय की घाटी में तथा अफ़गानिस्तान

नेकर पूर्वी आसाम तक और यूरोप तथा अफ्रीक
अधिकाश इलाके एव अमरीका के कुछ हिस्सों
ा जाता है।

इसके पंखों पर सुनहरे धब्बे होते हैं। इसका वज
से पन्द्रह पौंड के बीच होता है। इसके फैले हु
की नाप लगभग नौ फुट होती है। बाज के उड़
क्षमता साठ मील प्रति घंटे तक होती है और य
ता है सौ मील प्रति घंटे की रफ़्तार से।
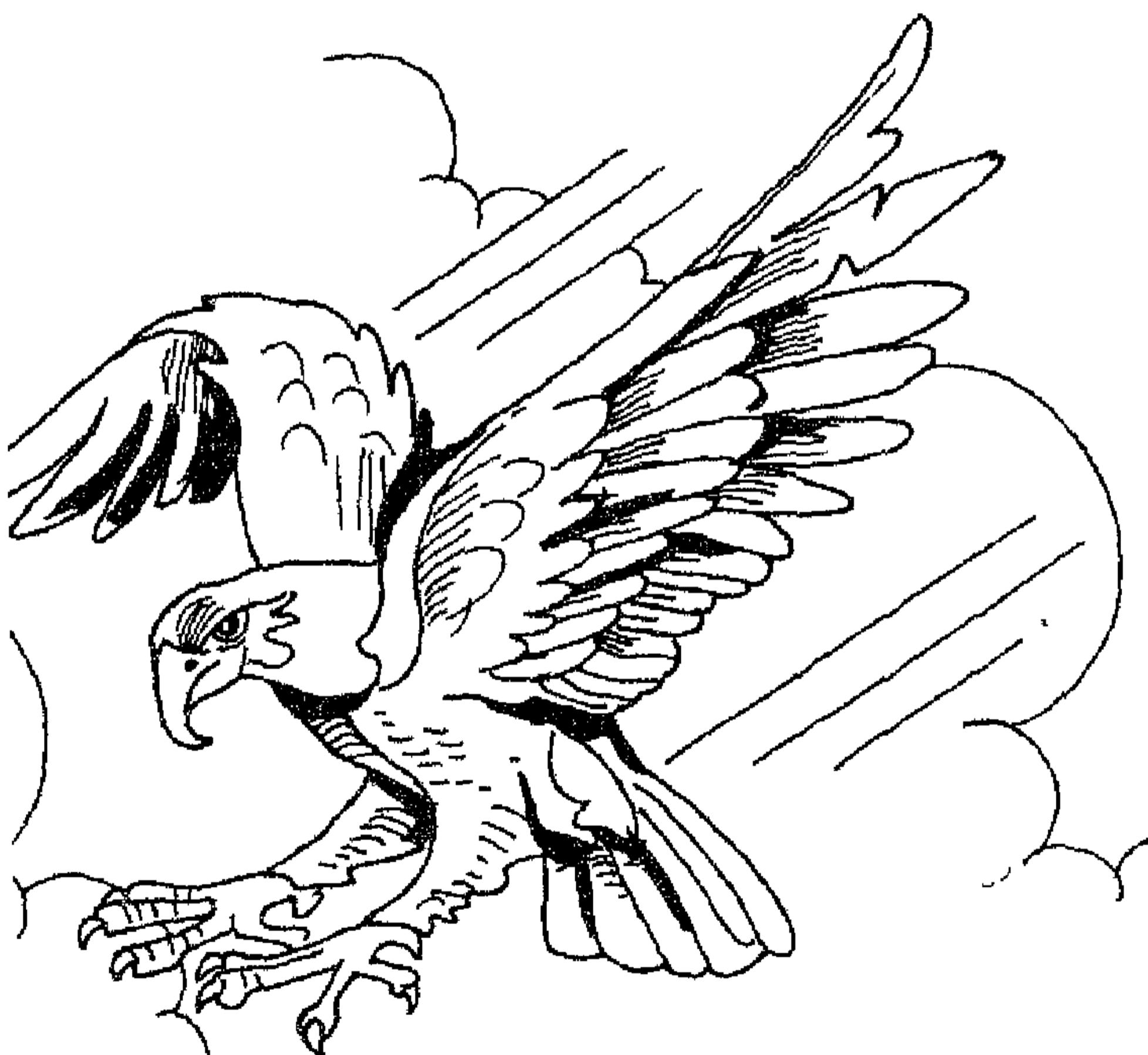
इसकी आंखें गहरे भूरे रंग के पंखों के बीच ऐसे
होती हैं कि सूर्य की तेज़ किरणें भी इसक
न में बाधा नहीं पहुंचा पातीं। इसके पंजे तथ

चोंच इतनी नुकीली और तेज़ होते है कि यह अपने शिकार को एक ही झपट्टे में फाड़ डालता है। इसमें अपने से दुगुने वज़न के जानवर को ढोने की क्षमता होती है। साधारणतया बाज पक्षी खरगोश, चूहे, लोमड़ी तथा सांप को अपना शिकार बनाता है।

बाज की इसी शिकारी प्रवृत्ति के कारण कई देशों में लोग इसे पालते भी हैं। मादा बाज सामान्यतया एक या दो सफ़ेद या हल्के भूरे रंग के अंडे देती है। अंडा देने के समय से लगभग 30 से 35 दिनों तक मादा बाज घोंसला कभी नहीं छोड़ती। नर मादा-घोंसले के दरवाज़े पर बैठा पहरा देता रहता है। यही मादा के लिए भोजन भी जुटाता है। बच्चा जब एक सप्ताह का हो जाता है, तभी से इसे भोजन की आवश्यकता महसूस होने लगती है और वह सात से आठ पौंड तक के शिकार निगलने लगता है। लगभग सात सप्ताह में वह अपने माता-पिता की तरह का हो जाता है और उसमें उड़ने की क्षमता भी उत्पन्न हो जाती है। कुछ दिनों बाद ही यह परिवार के साथ शिकार के लिए पहाड़ियों, जंगलों में निकल जाता है और फिर अपनी नयी ज़िन्दगी शुरू कर देता है।